

बच्चों का दुर्गाहिया

प्रैविनी

अंक 1 वर्ष 1

अगस्त - सितम्बर 2018



मूल्य ₹100

हिमा दास

हिमा दास ने 400 मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक जीता। उन्होंने यह दूरी 51.46 सैकेंड में तय की। फिनलैंड में हुई अण्डर-20 विश्व चैम्पियनशिप में हिमा ने यह मेडल जीता। पहली बार किसी भारतीय एथलीट ने विश्व चैम्पियनशिप में कोई पदक जीता है। पी. टी. ऊषा और मिल्खा सिंह ने कई मेडल जीते हैं लेकिन वे सभी मेडल एशियन चैम्पियनशिप में जीते थे। बधाई हिमा!



चित्र: चन्द्रमोहन कुलकर्णी



तुम भी आना

नवीन सागर

नदी चढ़ी है आना।
तुम भी आना तुम भी आना
आना तुम भी आना।

आए बादल घने उत्तर के
उनसे हाथ छुआना
हवा गा रही तुम भी गाना
गाने में खो जाना।

नदी किनारे गोद धरा की
हरा मखमली बाना
वहीं पेड़ पूरे पर छाया
एक घोंसला, सब चिड़ियों ने
मेहमानों के लिए बनाया
उसमें जा सो जाना।

रात लोरियाँ नदी गाएगी
पंख पसारे परी आएगी
सुबह गाएगी चिड़िया रानी
तुम्हें जगाने गाना।



ये जो साइकिल है न कुछ-कुछ तुम्हारी साइकिल की तरह ही है। इसमें भी दो पहिए हैं। पिछले पहिए में अपने आसपास की हवा है। जिसमें हम साँस लेते हैं। जिसमें धुआँ भी है, जिसमें धूल भी है, और जिसमें मोगरे की खुशबू भी है। यानी जैसा जीवन आसपास है वैसा सब कुछ अगले पहिए में चिड़िया के पंखों को छूकर लौटी हवा है। उसमें उड़ानें हैं।

साइकिल में एक सुरीली घण्टी भी है जो टकरावों को कम करने का एक सपना है। साइकिल में सूरज-चाँदों से ज़्यादा जुगनुओं की कहानियाँ होंगी। जो अपने जीवन की रोशनी अपने भीतर से ही पैदा करते हैं।

वह था तो बैठा पर उसके पाँव अजीब तरह से घूम रहे थे।
और वह बैठा-बैठा ही मेरी तरफ दौड़ भी रहा था....

सैकड़ों साल पहले एक आदमी दौड़ता हुआ गाँव आकर यह बता रहा था। उसने पहली बार साइकिल सवार को देखा था। यहाँ अजनबी साइकिल से डर पैदा हो गया था। जीते-जागते इंसान एक-दूसरे को न जानें तो उनमें आपस में डर पैदा हो जाता है। साइकिल हमारे मेल-जोल, दोस्ती के नाम होगी.. हम मिलते-जुलते रहे तो पृथ्वी बेफिकर घूम सकेगी...



राजस्थानी

बच्चों का दुनिया

सम्पादन - शशि सबलोक, सुशील शुक्ल
 सहायक सम्पादक - निधि गौड़
 उप सम्पादक - मिताली अहीर

डिजाइन - तापोषी घोषाल
 आवरण चित्र - प्रिया कुरियन
 वितरण - मुदित श्रीवास्तव, अनीता शर्मा
 एक प्रति - 100 रुपए
 वार्षिक - 600 रुपए
 तीन साल - 1600 रुपए
 (पंजीकृत डाक शुल्क सहित)

भुगतान विवरण -
 - ऑनलाइन ट्रांसफर के लिए :
 HDFC बैंक, डी-23 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
 खाता नम्बर 50100067091186
 IFSC : HDFC0000134

ऑनलाइन सदस्यता की लिंक -
www.ektaraindia.in/product/cycle-annual-subscription-6-issues/

बैंक ड्राप्ट/चेक
 तक्षशिला पब्लिकेशन/Takshila Publication
 के नाम नई दिल्ली में देय
 भुगतान के बाद पूरी जानकारी info@ektaraindia.in पर दें

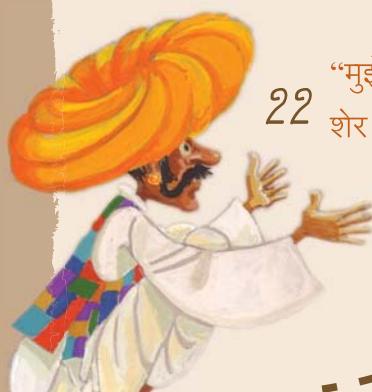
इकतारा - तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र
 ई-7/413 एच.आई.जी. प्रथम तल,
 अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016
 फोन : 0755 2446002, 4939472, 8989544927
 ई मेल : cycle@ektaraindia.in
www.ektaraindia.in

अंक 1 वर्ष 1 अगस्त - सितम्बर 2018

हिमा दास	2
तुम भी आना	3
साइकिल का बस अड्डा	6
उड़ती चील	8
साइकिल	10
सँकरे बाजार में ऊँट	12
मम्मी की मेज़	16
एक चिट्ठी	18
ये कौन चित्रकार है?	20
शेर और कवया	22
दो जलेबियाँ	25
मिस्टर NO	26
विशाखापट्टनम का ईश्वर	28



16
 मैं पेपरवेट को आँख के सामने रखकर खिड़की से बाहर देखती हूँ।
 देर-देर तक।



22 “मुझे मत खाओ!”
 शेर बोला, “मुझे बहुत भूख लगी है।”



पुल	30
गूँगा गीत	31
दयालु लकड़बग्धा	32
चटनी	33
नानी और धानी	35
मकर्खी और मच्छर का अन्तर	36
इंडोनेशिया के जज	37
ग़ालिब	38
पिंजरों का कारखाना	40
अंजीर	42
मेंढक	44
घण्टियाँ	46
इंजन और कौए	48
दरवाज़ा	49
साँप मुझे बहुत आकर्षित करते हैं	50
	54
	56
	58
	61
	62
	64
	66
	68
	72
	74
	76
	77
	78
	79
	80



35



57



49





साइकिल का बस अड्डा

चित्र: प्रोइती रॉय





उत्ती चौल

की परछाई पर
कागज का ठुकड़ा

विनोद कुमार शुक्ल
चित्र: अतनु राय

इस

छोटी-सी बसावट में सुबह से
चहल-पहल शुरू हो जाती।
दोपहर का बहुत थोड़ा समय बचता, तब
ऐसा लगता कि चहल-पहल थम गई है। इस
थमी हुई चहल-पहल में हमारे खेल की दौड़-
धूप शुरू होती थी। हम, पता नहीं कैसे एक
निश्चित जगह में, करीब-करीब एक निश्चित
समय में एक जगह इकट्ठे हो जाते थे। ऐसा
लगता था कि जैसे अपने आप हमारी सोच में वह
समय आ जाता और हम अपने घरों से निकल पड़ते। कुछ
आगे-पीछे ज़रूर होते। पर ऐसा बहुत कम होता था कि देर तक
किसी का इन्तज़ार करना पड़ता हो। हमारे इकट्ठा होने का
जो समय था, उससे भी हमारी दोस्ती थी।

हम जो भी करते वह हमारा खेल होता। झगड़ पड़ते तो भी
खेल। बात करते तो खेल। गुस्सा होकर बात करना बन्द कर
देते, तो भी खेल। गिर पड़ते, जो गिरा देता वह हँस पड़ता।
उससे भिड़ जाते। बाकी छुड़ा लेते, वह भी खेल होता था।



आज हम लोग मगर-तालाब के पार के ऊपर पीपल के पेड़ के नीचे इकट्ठा थे। तालाब का पार बहुत ऊँचा था। जहाँ खड़े थे उसके काफी नीचे पानी था। खड़ी ढलान थी। ढलान से पानी तक उतरने की कितनी भी कोशिश करते मुरमी पठाव के कारण, बड़े-बड़े कँकड़ों पर पैर पड़ते ही सन्तुलन बिगड़ जाता। अपने को सम्हालते-सम्हालते दौड़ पड़ते। पर पानी तक पहुँचते-पहुँचते किसी तरह रोक लेते।

तालाब के पार के ऊपर से दूर तक खुली फैली जगह को देखते। नीचे दूर तक खुली जगहें थीं, मैदान की तरह। कहीं-कहीं घने पेड़ थे। ये इमली के पेड़ थे। तालाब से उतरते, भागते हम नीचे मैदान पर आ गए। हमारे ऊपर, आकाश की सपाट ऊँचाई थी। वहाँ खेलने के लिए इकट्ठी गोल चक्कर लगाती चीलें थीं। उड़ती चीलों को गिनते हुए मैंने कहा, “हम लोग भी पाँच हैं। यह हमारी टीम है। हमारी टीम में मैं बकुल, दूसरा माधव, तीसरा रजा, चौथा वाल्मीकि, पाँचवाँ इन्द्रकिशोर।”

बड़े काम का खेल था - उड़ती चील की परछाई पर काग़ज का टुकड़ा रखना। कहा जाता था कि परछाई पर यदि काग़ज का छोटा टुकड़ा पड़ जाए तो वह एक रूपए का नोट बन जाएगा। हम लोगों ने पहले भी कोशिश की थी। फिसलती परछाई पर काग़ज का टुकड़ा रख नहीं पाते थे। परछाई आगे चली जाती थी। सबकी कमीज़ की जेब में काग़ज के छोटे-छोटे टुकड़े भरे थे।

बड़े काग़ज के टुकड़े का कोई फायदा नहीं था। एक रूपए के नोट से काग़ज का टुकड़ा बड़ा नहीं होना चाहिए। एक के नोट से यदि कितना भी छोटा हो वह चल जाएगा।

धूप थी। और मैदान में उड़ती चीलों की परछाई थी। हम तैयार थे। सावधान होकर पास-पास तैयार खड़े थे। माधव ने एक, दो, तीन कहा। हम परछाई के पीछे दौड़ पड़े। काग़ज रखते जाते, पर फिसलती परछाई पर रख नहीं पाते थे। जब रखते परछाई आगे चली जाती। तालाब के पार के ऊपर

परछाई चढ़ती, हम भी चढ़ते। पर बेकार होता। परछाई बहुत आगे हो जाती। मगर-तालाब की तरफ भी ढलान में लुढ़कते-फिसलते। काग़ज का टुकड़ा, काग़ज का टुकड़ा ही रहता।

थक कर लौट आते। मैदान पर हमारे रखे काग़ज बिखरे रहते। हवा से इधर-उधर होते इस खेल के बाद दूसरे दिन मैदान का चक्कर लगाने फिर आते कि बिखरे काग़जों में से किसी एक पर परछाई पड़ जाने से एक रूपए का नोट बना होगा जो मिल जाएगा।

रजा को एक बार मैदान पर पड़ा हुआ एक रूपए का नोट मिला था। वह अभी तक समझता है कि डाले हुए काग़ज का बना हुआ नोट है। यह नोट किसी का गिरा हुआ भी हो सकता था। पर वह मानता नहीं था। और यही खेल खेलने का उसका मन हो जाता था। बाकी लोगों का उतना नहीं। रजा के अलावा हम चारों को एक-एक बार एक रूपए का नोट मिल चुका है। मैं असली बात बताता हूँ। तब इस खेल में शामिल होने उस बार मैं घर से एक रूपए का नोट ले आया था। यह दिखाने-बताने के लिए कि काग़ज से बना नोट मुझे मिला और जैसे मेरी जीत हुई। रजा को छोड़ मेरे कहने से ही बाकी सब ने इसी तरह किया। वही एक मेरा नोट रजा के अलावा सब को बारी-बारी से मिला। रजा को मालूम नहीं हुआ।

लौटकर मैंने उस नोट को घर की अलमारी में बिछे अखबार के नीचे उसी जगह रख दिया, जहाँ से लिया था।



साइकिल

अरुण कमल

चित्र: प्रिया कुरियन



जब

पहले पहल अफ्रीका में एक आदमी ने साइकिल चलाई तो देखनेवाले अचरज से बोले, देखो, बैठा-बैठा चल रहा है!

साइकिल अकेली सवारी है जिसे आप खुद चलाते हैं और बैठे भी रहते हैं। बाकी लगभग सारी सवारियाँ या तो पश्च चलाते हैं या तेल की मशीनें। उनको आप हाँकते हैं, आदेश देते हैं और वे चलती हैं। वहाँ उनकी मर्जी और मिज़ाज भी आड़े आ सकते हैं। पर यहाँ तो आप ही सवारी, आप ही सवार। अकेली सवारी जिसका अलग से कोई गाड़ीवान या चालक नहीं होता। और इतना मज़ा है इसमें। आप पैडल मारते तेज़ हवा में उड़े जा रहे हैं। हवा आपके चेहरे और छाती को झकझोर रही है। कमीज़ के बटन खुले हैं। कमीज़ की पीठ बहती हवा से पाल की तरह फूल रही है। ऐसा रोमान किसी दूसरी सवारी में नहीं। लम्बी सीधी सड़क, दोनों तरफ पेड़ या हरे-भरे धान के खेत, ऊपर कुछ बादल और सन सन करती हवा और साइकिल - इससे बड़ा सुख और क्या होगा! तेज़ और तेज़ दौड़ते पहिए। लगता है धरती आकाश धूप हवा सब मेरे साथ हैं।

और मुझे हमेशा अचरज होता है कि जो साइकिल ऐसे खड़ी भी नहीं हो सकती दो पहियों के बावजूद वो सवारी और बोझे लादे-लादे चलती कैसे रहती है? यहीं तो गति का कमाल है। बस हवा चाहिए पहियों में। पहिए बस ज़रा-सा धरती को छूते हैं। बाकी सारा तो हवा में रहते हैं। यह हवा ही है जो चलाती है। यह वही हवा है जो हमारे फेफड़ों में है। जो गेंद में है। साइकिल भी एक गेंद है - हवा में उछलती। पर कभी भी धरती का साथ नहीं छोड़ती। और साइकिल एक पूरा घर है। पूरा परिवार एक साइकिल में समा सकता है। मैंने देखा है मेलों में चार-चार लोगों को एक साइकिल पर घूमते। और कितना मज़ेदार है घण्टियों का बजना। दुनिया में इतनी-इतनी घण्टियाँ बनीं। इतने-इतने घण्टे। पर साइकिल की घण्टी सबसे निराली है। ज़रा-सी दुन्न एक तरंग और प्यार भरी चेतावनी कि भाई ज़रा रास्ता छोड़ दो।

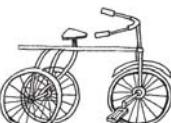
अकेली सवारी जिससे कोई बड़ी दुर्घटना हो ही नहीं सकती। जो चलानेवाले के साथ-साथ चलनेवाले का भी ख्याल रखती है। जो प्रकृति का ख्याल रखती है। जो धरती को भी कोई आघात नहीं देती। जिसे जीवन और प्रकृति से कुछ भी नहीं चाहिए, बस एक इंसान का साथ। कुते के बाद इंसान का सबसे बड़ा साथी यहीं साइकिल है। गाँव हो या शहर इससे ज़्यादा भरोसेमन्द दूसरा कोई नहीं। सबसे सस्ता भी तो है। और इतनी तरह की साइकिलें हैं। बच्चों से लेकर बड़े खिलाड़ियों तक के लिए। इतने रंगों में। इतनी तरह के पहियोंवाली। शानदार ब्रेकवाली। ज़रा-सा पैडल मारो, चलो, तेज़, तेज़, खूब तेज़ और एकदम से ब्रेक या फिर पैरों को टिका दो ज़मीन से। चलाते हुए महसूस कर सकते हो कि नीचे धरती कैसी है - उठती-गिरती, ऊबड़-खाबड़, समतल सुगम, बालूदार या कीचड़वाली। और बता सकते हो कि हवा में कौन-सी गन्ध है।

साइकिल सबसे कम बोलानेवाली सवारी है। और हर रास्ता इसका रास्ता है। जहाँ रास्ता नहीं है वहाँ भी रास्ता है।

साइकिल सबको लुभाती है। बच्चे बूढ़े सबको। महान लेखक टॉल्स्टॉय ने ढलती उम्र में साइकिल सीखी।

भीमसेन जोशी को साइकिल चलाने का शौक था। महान फिल्मकार बर्गमैन के जीवन की सबसे सुन्दर स्मृति थी - तेज़ बारिश में पिता के साथ साइकिल के डण्डे पर बैठे-बैठे दूर ज़ंगल में निकल जाना और फिर कीचड़ में लथपथ गिर पड़ना। दुनिया की एक महान फिल्म बाइसाइकिल थीफ (साइकिल चोर) इसी साइकिल को अमर बनाती है।

मेरी इच्छा है कि एक दिन मैं अपना ज़रुरी सामान पीछे बाँध साइकिल पर निकल जाऊँ... दूर बहुत दूर... हर घर के पास दुन दुन घण्टी बजाता चलता चला जाऊँ। धरती के आखरी छोर तक पहियों में, फेफड़ों में, वायुमण्डल में हवा भरे हवा से बातें करता हवा हो जाऊँ।



ट्यूक्टे बाजाए में ऊंट

कृष्ण कुमार चित्र: भार्गव कुलकर्णी

साइकिल के डण्डे पर बैठे-बैठे बाल कटवाने का अनुभव मुझे है, पर ऊंट पर बैठे-बैठे खरीदारी की कल्पना मैंने नहीं की थी। सिरोंज जाकर वह सम्भव हुई।

“सिरोंज? यह कहाँ है?”

सिरोंज का नाम लेते ही पहला सवाल यही सुनने को मिलता था। इस सवाल का जवाब सुनकर लोग फौरन दूसरा सवाल जड़ देते थे, “आप वहाँ क्यों जाना चाहते हैं?”

ये दो सवाल सुनते-सुनते दो साल बीत गए। सिरोंज पहुँचने की उम्मीद खत्म-सी होने लगी।

पहले सवाल का जवाब सुनकर लोग चौंकते थे। कुछ लोग निराश भी हो जाते थे। “सिरोंज कहाँ है?” इस प्रश्न का उत्तर है, “मध्यप्रदेश में।” यह सुनकर चौंकनेवालों को लगता था कि मैं उनके ज्ञान की सीमा बता रहा हूँ! मेरे कई दोस्त जो मध्यप्रदेश में रहते हैं, सोचते हैं कि वे मध्यप्रदेश से अच्छी तरह परिचित हैं। उनमें से कई का दावा है कि वे मध्यप्रदेश का कोना-कोना देख चुके हैं। ‘सिरोंज’ सुनकर उन्हें लगता था कि ज़रूर कोई कोना छूट गया है।

कुछ लोग चौंकने की जगह निराश महसूस करते थे। ‘सिरोंज’ सुनकर उन्हें लगता जैसे यह अपरिचित जगह शायद फ्रॉस या ईरान में होगी। सिरोंज मध्यप्रदेश में है, यह सुनकर वे सोच लेते थे कि वहाँ क्या रखा होगा। यदि कुछ होता तो वे अब तक देख, या कम से कम सुन, चुके होते। इन्टरनेट और स्मार्ट फोन के रहते वे यदि सिरोंज का नाम भी नहीं जानते तो ज़रूर यह सिरोंज की भूल या कमी है! इसीलिए उनकी रुचि इस आगे सवाल का जवाब सुनने में होती कि मैं सिरोंज क्यों जाना चाहता हूँ।

सिरोंज जाने की इच्छा का कारण मेरी शिक्षा के इतिहास में छिपा है। जब मैं प्राइमरी कक्षा में पढ़ता था,

मध्यप्रदेश नया-नया बना था। नई-ताज़ी, पाठ्यपुस्तक में लिखा था कि मध्यप्रदेश कई इलाकों को मिलाकर बनाया गया है। इन इलाकों में से एक सिरोंज था। बड़े होकर शिक्षा और रोज़गार की तलाश में मुझे मध्यप्रदेश छोड़ना पड़ा, पर सिरोंज मेरे दिमाग में अटका रहा। मुझे कभी कोई ऐसा आदमी नहीं मिला जो सिरोंज के बारे में कुछ बता सका हो। मेरी मम्मी मध्यप्रदेश के कई ज़िलों में रहीं और कई जगह घूमने भी गईं। पर वे भी सिरोंज के बारे में कुछ नहीं बता सकीं।

इस साल फरवरी में आखिरकार मैं सिरोंज पहुँचा। वहाँ से लौटे-लौटे शाम हो गई थी। शरीर थका हुआ था, पर मन खुश था कि मैं सिरोंज देख आया था। लौटकर अपने दोस्त के घर पहुँचा तो उसने सबसे पहले यही पूछा, “कैसा था सिरोंज? क्या देखा वहाँ?”

यह सुनकर मेरे मन में सवाल आया कि जिसने सिरोंज नहीं देखा, उसे सिरोंज के बारे में क्या बताऊँ। यह प्रश्न मेरे मन में हर यात्रा से लौटकर पैदा होता है। यात्रा से अपनी जिज्ञासा तो पूरी हो जाती है, मगर बताने की समस्या गम्भीर रूप ले लेती है।

सिरोंज की यात्रा को लेकर मुझे यह प्रश्न और भी गम्भीर लगता है क्योंकि वहाँ उस तरह से देखने लायक शायद कोई जगह या चीज़ नहीं है जिस तरह कोई जगह पर्यटकों को दिखाने लायक मानी जाती है। पर्यटक यानी ट्रूरिस्ट भी यात्री ही होता है, पर उसकी यात्रा प्रायः पहले से निर्धारित होती है। उसकी खातिर कुछ विशेष जगहों को चुनकर सुन्दर बनाया जाता है। इस तरह की एक जगह मैंने सिरोंज के रास्ते में देखी। यह जगह थी उदयगिरि। यहाँ आज से लगभग डेढ़ हज़ार साल पहले चट्टानी पहाड़ी

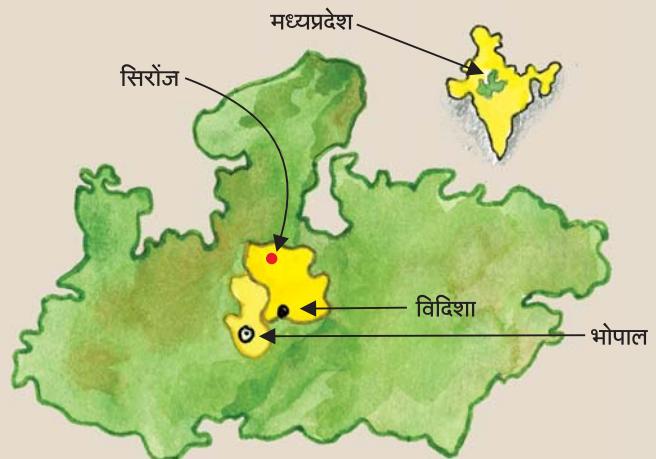




सिरोंज में कभी ऊँट पर बैठे-बैठे खरीदारी होती थी।

गुफाओं में मूर्तियाँ तराशी गई थीं। सिरोंज के मुकाबले उदयगिरि ज्यादा महत्वपूर्ण जगह मानी गई है। गुफाओं में घुसकर विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी की अनोखी मूर्तियाँ देखकर कोई इस बात पर आश्चर्य करेगा कि ये भव्य मूर्तियाँ गुफाओं के अँधेरे में कठोर पत्थर पर कैसे तराशी गई होंगी – वह भी पाँचवीं या छठी सदी में। आज इक्कीसवीं सदी में हम आराम से टॉर्च जलाकर गुफा के अँधेरे में उजाला कर लेते हैं और प्रलय में पृथ्वी को बचाने की मुद्रा में विष्णु के वराह रूप को ध्यान से देख लेते हैं।

सिरोंज वहाँ से डेढ़ घण्टा आगे था। उदयगिरि की पहाड़ी के पास हीलियोडोरस का स्तम्भ है। यह खम्भा एक ग्रीक विद्वान की स्मृति में ईसा पूर्व दूसरी सदी में बनवाया गया था जो तक्षशिला में रहता था। नालन्दा और तक्षशिला प्राचीन भारत के दो बड़े विश्वविद्यालय थे। नालन्दा के अवशेष आज के बिहार प्रान्त में हैं और तक्षशिला के अवशेष लाहौर से रावलपिण्डी के रास्ते में दाईं ओर दिखाई देते हैं। तक्षशिला से चलकर उदयगिरि तक पहुँचने में हीलियोडोरस को कितने महीनों का समय लगा होगा यह कोई नहीं बता सकता। उसकी इस यात्रा की याद में बने स्तम्भ को आज कई लोग ‘खम्भा बाबा’ के नाम से पुकारते हैं। मुझे यह नाम काफी रोचक लगा क्योंकि इससे हीलियोडोरस के चेहरे की कल्पना करने में कुछ मदद मिलती है, वरना उसकी कोई तस्वीर हम नहीं बना सकते। रास्ते में पेड़ों की संख्या घट रही थी और उनकी ऊँचाई भी। महसूस होता था कि हम मालवा और विंध्य के पठारों को पीछे छोड़कर धीरे-धीरे कुछ सूखे इलाके की ओर बढ़ रहे हैं जो और आगे चलकर राजस्थान की धरती जैसा दिखेगा। सिरोंज आज विदिशा ज़िले की तहसील है। पर उसका इतिहास राजस्थान के टोंक ज़िले से जुड़ा हुआ है। भारत की आज़ादी के नौ साल बाद तक सिरोंज टोंक का हिस्सा बना



रहा। फिर 1956 में जब मध्यप्रदेश बनाया गया तो सिरोंज को विदिशा में शामिल कर दिया गया।

पर इस ताज़े प्रशासनिक इतिहास से सिरोंज का लम्बा सामाजिक इतिहास नहीं समझा जा सकता। इस इतिहास में घुसने के लिए दरवाज़े या खिड़की टूँटना ज़रूरी है। ऐसा एक दरवाज़ा ज्याँ बपतीस्त टैवर्निये नाम के प्राँसीसी यात्री के यात्रा वृत्तान्त से खुलता है। वह लगभग चार सौ साल पहले सिरोंज से गुज़रा था।

वह यहाँ क्यों आया होगा? यह सवाल उतना ही महत्वपूर्ण है जितना यह सवाल कि उसने यहाँ क्या देखा। दरअसल पहले प्रश्न में दूसरे प्रश्न का जवाब छिपा है। टैवर्निये के पिता नक्शों का पेशा करते थे। ‘नक्शों का पेशा?’ यह भला कौन-सा पेशा है? यह पेशा हमें उस समय की याद दिलाता है जब नक्शे बनना शुरू ही हुआ था और दुनिया के ज्यादातर भागों का कोई नक्शा नहीं बना था। लोग खुद यात्रा करके पता लगाते थे कि कोई जगह कितनी दूर है, फिर अन्दाज़ से नक्शे बनाते थे।

टैवर्निये 1640 के आसपास सूरत से आगरा जाते हुए सिरोंज आया होगा। सम्भवतः वह पैदल चलकर आया होगा और अपने कदम गिनकर उसने इस रास्ते का पहला नक्शा बनाया होगा। यह रास्ता उस ज़माने का एक प्रमुख व्यापार मार्ग था। सूरत का उस समय वह स्थान था जो आज मुम्बई





का है, यानी सूरत भारत के पश्चिमी तट का सबसे बड़ा बन्दरगाह था। आगरा, जिसे अकबर ने अपनी राजधानी बनाया था, अभी तक एक बड़ा राजनैतिक और व्यापारिक केन्द्र बना हुआ था। सूरत से आगरा जानेवाले व्यापारी सिरोंज में रुककर आराम करते होंगे। उनके ऊंट सिरोंज के तालाब में नहाते होंगे, फिर कुछ नया सामान लेकर आगे आगरा की तरफ बढ़ते होंगे।

सिरोंज का प्रमुख बाज़ार एक सँकरे नाले जैसा दिखता है। मोटरसाइकिल से चौड़ा गाहन उसमें नहीं चल सकता। मैं पैदल घुसा और दोनों तरफ बनी छह-सात मंज़िलों में चल रही दुकानें देखकर दंग रह गया। मुझे बताया गया कि यहाँ

कभी ऊंट पर बैठे-बैठे खरीदारी होती थी। ये यादें और उनकी बातें सम्भवतः उस समय की हैं जब सिरोंज का शासक एक नवाब बना। वह टोंक का नवाब था और उसके वंशज आज भी टोंक में रहते हैं। अट्ठारहवीं सदी में अँग्रेज़ों ने सिरोंज का इलाका मराठों से छीना था और टोंक के नवाब को शासन करने के लिए सौंपा था। तारीखों, लड़ाइयों, जीत-हार से भरी इस कहानी से बेगाना लगता है सिरोंज का बाज़ार। मैंने वहाँ ऊँची-ऊँची, एकदम सँकरी दुकानें देखीं जो ज़मीन के नीचे से लेकर छठी-सातवीं मंज़िल पर चल रही थीं। ज़मीन के नीचेवाली दुकान में जिसमें झुके बिना घुसा नहीं जा सकता, एक दर्जी अपनी

(पेज 19 पर जारी)



मम्मी की मेज़

अबीरा शेख
चित्रः वन्दना बिष्ट



मम्मी की पढ़ने-लिखने की मेज़ मुझे बहुत अच्छी लगती है। वह खिड़की के पास है। खिड़की से पेड़ दिखते हैं। नीम के। मम्मी जब यहाँ अपनी कुर्सी पर बैठकर लिख रही होती है, तो उन्हें देखना बड़ा अच्छा लगता है। वे चाय पीती जाती हैं और किताब पढ़ती हैं या कुछ लिखती हैं। जब वे अपने कमरे में नहीं होतीं, तो मैं उनकी कुर्सी पर बैठ जाती हूँ। मम्मी की तरह। फिर लिखती हूँ। कुछ भी, जो मन में आए।

मम्मी की मेज़ पर बड़ी दिलचस्प चीज़ें रखी हैं। एक कलमदान है। उसमें कई पेन हैं। एक पेंसिल भी है। मैं एक कागज़ पर सब पेन चला-चलाकर देखती हूँ। लाल वाले पेन से बड़े अच्छे फूल बनते हैं। लेकिन उतने अच्छे नहीं, जितने मेज़ पर रखे पेपरवेट में खिले हुए हैं।

काँच का गोल-गोल पेपरवेट बहुत ही खूबसूरत है। उसमें लाल फूल खिले हुए हैं। मैं पेपरवेट को ओँख के सामने रखकर खिड़की से बाहर देखती हूँ। देर-देर तक। तब वही लाल फूल नीम के पेड़ पर खिल जाते हैं।



एक कटर भी है मम्मी की मेज़ पर। अपडे के आकार का। प्लास्टिक का। सफेद। उसमें एक खाँचा बना है। मम्मी की कई चिट्ठियाँ आती हैं। मम्मी लिफाफे के सिरे को कटर के खाँचे में रखकर खचाक से खींच देती हैं। लिफाफा वहाँ से कटकर खुल जाता है। मम्मी एक तरफ से खुले लिफाफे किनारे रखी ट्रे में रख देती हैं।

मेरी कोई चिट्ठी नहीं आती। तो मैं अपने लिए चिट्ठी लिखती हूँ। मम्मी के चिट्ठीवाले लिफाफे में उसे रख देती हूँ। फिर लिफाफे की बन्द तरफ को कटर के खाँचे में रखकर खींच देती हूँ। खचाक। और चिट्ठी निकालकर पढ़ती हूँ। मम्मी की तरह।

मम्मी की मेज़ बहुत साफ-सुथरी रहती है। हर चीज़ की अपनी जगह है। हर चीज़ उस जगह पर होती है। जाने से पहले मैं ध्यान से सब चीज़ें उनकी जगहों पर रख देती हूँ। मम्मी को पता नहीं चलना चाहिए।

आज स्कूल से आने के बाद मैं मम्मी की कुर्सी पर बैठती। मेज़ पर एक लिफाफा मिला। उस पर लिखा था - अबीरा। मेरे लिए चिट्ठी आई थी! मैंने कटर से लिफाफा खोला। खचाक। उसमें मेरी एक फोटो थी। इसी मेज़ के सामने, कुर्सी पर बैठे पेपरवेट को आँखों के आगे रखे। खिड़की की तरफ देखते हुए।



गुहेरी

श्रद्धा उपाध्याय
चित्र: तापोषी घोषाल



मुन्नी को आँख में गुहेरी हो गई थी। पहले तो उसे लगा कि आँख को ज्यादा ज़ोर-से मीचने से वह लाल हो गई है। फिर जब एक दाना-सा पलकों पर दिखने लगा तब उसकी मम्मी ने बताया कि ये गुहेरी है। मम्मी ने उसे दो इलाज बतलाए। एक तो अपनी हथेली पर उँगली मलकर उस उँगली से गुहेरी की सिकाई करो। और दूसरा, शाम को पहाड़ को घर आने का न्यौता दे आना।

अगली सुबह गुहेरी ठीक हो गई। मम्मी ने उसे पहाड़ को जीभ चिढ़ाने के लिए भेज दिया (ताकि वो सचमुच न आ जाए)।

यह भी कोई बात हुई भला! मुन्नी ने सोचा। ऐसे किसी को झूठ बोलकर अपना इलाज क्या करना! वैसे तो दादी कहती है कि हम पहाड़ों की गोद में ही पलते-बढ़ते हैं। वो भागती हुई छत पर गई और पहाड़ के सामने कान पकड़कर खड़ी हो गई।



एक नदी...

प्रियंवद

ओ री नदी! सुन! बरसों पहले मैंने तुझे एक पत्र लिखा था। पर मैं नहीं जानता था तेरा घर कहाँ है? “इसे किस पते पर भेजूँ?” मैंने माँ से पूछा। उनका गाँव तेरे किनारे पर था। वह तेरी गोद में बड़ी हुई थीं। उन्हें तेरे खूब गीत याद थे। मेरी बात सुनकर वह हँस दी।

“मैंने तो नदी को बस गाँव के घाट पर ही देखा है। तू मछुआरों से पूछा वे नदी के एक छोर से दूसरे छोर तक जाते हैं।”

मैंने मछुआरों से पूछा। मेरी बात सुनकर वे भी हँस दिए।

“हम तो सिर्फ सूरज उगने से झूबने तक की नदी को जानते हैं। पर नदी वहाँ भी होती है जहाँ उस समय चाँद होता है। तू मछलियों से पूछा वे सारा जीवन नदी में रहती हैं।”

मैंने मछलियों से पूछा। वे खिलखिला कर हँसीं और मेरी बात पर देर तक नाचती रहीं। फिर बोलीं, “नदी हमारा घर है। क्या घर का भी कोई घर होता है? तू जल से पूछा नदी जल से ही बनती है।”

मैंने जल से पूछा। उसने कहा, “नदी बनने से पहले पर्वत हमें सहेजता है। तू पर्वत से पूछा!”

मैंने पर्वत से पूछा। उसने कहा, “मेघ हमें जल देते हैं। तू मेघों से पूछा!”

मैंने मेघ से पूछा। उसने कहा, “वायु हमारे घोड़ों की सारथी है। तू वायु से पूछा!”

मैंने वायु से पूछा। उसने कहा, “दिशाएँ मुझे धारण करती हैं। मैं दिशाओं की साँस हूँ। तू दिशाओं से पूछा!”

मैंने दिशाओं से पूछा। उन्होंने कहा, “हम ईश्वर की भावना हैं। तू ईश्वर से पूछा!”

मैंने ऊपर, ईश्वर की तरफ मुँह उठाकर तेरे घर का पता पूछा। हर बार मेरी ही आवाज़ वापस लौटकर आती रही। बरसों बीत गए।

आज रात, जब लोग साँझा-बाती कर चुके थे और पूर्णमासी का चाँद तेरे जल में अपने पाँव धो रहा था। मैं अपनी कुटिया में दीपक जलाने जा रहा था। तभी मुझे एक मल्लाह के गाने की आवाज़ सुनाई दी। कुटिया के बाहर आकर मैंने देखा। धान से भरी एक छोटी नाव तेरी शान्त लहरों पर



जा रही थी। उस पर आकाश दीप जल रहा था। सफेद चाँदनी में बहते हुए एक पीले शंख की तरह दिखती नाव से वह गीत आ रहा था।

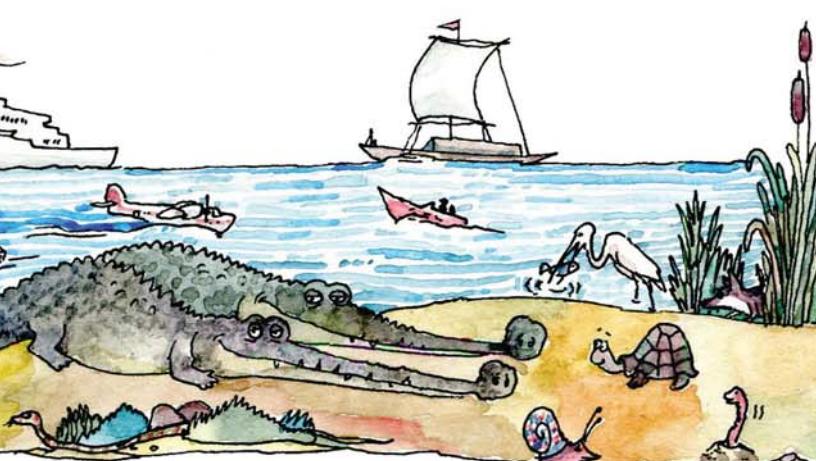
ओ नदी, तू अनन्तकाल से जल-थल-पर्वत-जंगलों में विचरती रही। तुझसे किसी ने नहीं पूछा, तू कौन है, कहाँ से आई है और तुझे कहाँ जाना है? आज जब तू विराट सागर के असीम जल में एकाकार होने जा रही है, तुझसे कोई नहीं पूछता, तू कौन थी, कहाँ से आई थी, और अब तू कहाँ जाएगी? ओ नदी...

बहता हुआ पीला शंख धीरे-धीरे क्षितिज की रजत-राशि में डूब गया।

मैं कुठिया के अन्दर आया। शैवन्ती के पुराने, सूखे फूलों और चिड़िया के पंखों के बीच रखे पत्र को निकाला। तेरे किनारे पर आया और पत्र को तुझमें प्रवाहित कर दिया।



(चित्र: अतनु राय साभार समावेश)



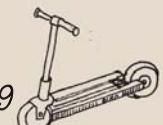
(पेज 15 का शेष)

मशीन चला रहा था। ऊपर की मंज़िल पर किराने की दुकान थी और उसके ऊपर कपड़ों की या गहनों की।

आज के सिरोंज में सूत की शानदार दरी बनती है। पर दरी बनानेवाले कारीगर अब बहुत कम रह गए हैं। तरह-तरह के कागज बनाने का उद्योग भी लुप्त हो चुका है। पत्थर पर नक्काशी करनेवाले कारीगर भी एक समय में काफी संख्या में रहे होंगे। आज का सिरोंज वह नहीं है जहाँ चार सौ वर्ष पहले टैर्वर्निये आया था। पेरिस से रवाना होकर वह इस्फहान होते हुए सूरत फिर सिरोंज और आगरा होता हुआ बनारस और ढाका पहुँचा था। इस्फहान भी सिरोंज की तरह अपनी प्रसिद्धि खो चुका है वरना पहले एक कहावत थी – इस्फहान में आधा जहान।

पुराने सिरोंज की स्मृति एक विशाल हवेली में प्रवेश करने पर क्षण भर के लिए कोई धृती है। इस हवेली के दरवाजे के दोनों तरफ खूबसूरत ढंग से तराशे गए चौकोर पत्थर हैं। अन्दर पहुँचकर एक आँगन पार करते समय बाईं तरफ से आनेवाली आवाजें बताती हैं कि अब यहाँ एक स्कूल है। इस इमारत को अब राव साहब की हवेली कहते हैं। दरवाजे के बाहर फैला हुआ विशाल परिसर टूटे-फूटे मगर सुन्दर अवशेषों और चन्द पेड़ों का नज़ारा स्कूल से घर जा रहे बच्चों के कारण सजीव हो उठा था। निकलते-निकलते मुझे एक बुजुर्ग कवि मिले जो अपनी ग़ज़लें सुनाने कई देशों में गए हैं। इस समय भी वे किसी स्थानीय आयोजन में भाग लेने जा रहे थे।

दोपहर ढल रही थी। कुछ घण्टों में जितना सिरोंज मैं देख सकता था, देख चुका था। कई जगहें अनदेखी छोड़कर मैं भोपाल के लिए रवाना हुआ। आवाज़ आई, “फिर आना।” अगली बार मुझे और चैन से ढूँढ़ना। उस तालाब के किनारे कुछ समय बिताना जहाँ ऊँट नहाते थे।





—ये कौन चित्रकार हैं?

अखिलेश

यह अस्सी के दशक की बात है। मुझे बाबा आमटे ने आनन्द वन बुलाया था। मुझे आश्रम में सिल्क प्रिंट की एक छोटी-सी यूनिट डालनी थी। और वहाँ के बच्चों को सिखाना था। ताकि वो खास मौकों पर खुद ग्रीटिंग्स बना सकें। दिनभर काम करने के बाद रोज़ रात को बाबा के साथ ही खाना खाना होता था। उनसे दिनभर के कामों की बात होती थी। बाबा के सोने तक बातें चलती रहतीं। उनके सिरहाने एक फ्रेम किया चित्र लगा था। मुझे वो बहुत खूबसूरत लगा। वर्कशॉप की पूरी तैयारी हो चुकी थी। अब हमें पहला प्रिंट निकालना था। मैंने बाबा से कहा, “मैं यह चित्र प्रिंट करना चाहता हूँ। इसमें तीन रंग हैं। इससे बच्चे रजिस्ट्रेशन भी सीख जाएँगे और है भी खूबसूरत चित्र।” बाबा ने कहा, “हाँ, ले जाओ।”

सिल्क स्क्रीन प्रिंट में रजिस्ट्रेशन बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसमें तीन या उससे ज्यादा रंगों को उसी तरह, उसी

जगह प्रिंट करने के लिए कागज़ को नियत जगह पर रखने के लिए कुछ निशान बनाते हैं। हर रंग के लिए कागज़ को उन्हीं जगहों पर रखने से ही प्रिंट सही छपता है। हमने तीन निगेटिव बनाकर तीन सिल्क स्क्रीन एक्सपोज़ किए। फिर रजिस्ट्रेशन करना सिखाया। यानी एक ही कागज़ पर एक के बाद एक तीन बार छापना सिखाया। पहला प्रिंट देख वहाँ के बच्चों के चेहरे पर जो खुशी थी वो देखने लायक थी। वे सब बेताब थे बाबा को अपना करिश्मा दिखाने के लिए। हम पहला प्रिंट लेकर बाबा के पास गए। चित्र वापस फ्रेम कर वहाँ लगा दिया। बाबा ने देखा तो उनकी आँख में आँसू आ गए। उन्होंने कहा कि क्या आपको पता है यह किसने बनाया है। मैंने कहा, “नहीं मालूम।” वो बोले, कल सुबह मिलवाएँगे। सुबह उन्होंने मुझे उससे मिलवाया। वो कोई सात-आठ साल का बच्चा था। वो जन्म से देख नहीं पाता था। मैं हैरान था। उसने पेड़ का इतना सुन्दर, इतना सटीक चित्र बनाया था। उस पर फल भी लगाया। इस चित्र से उसकी रेखांकन की, आकार की, रंगों की समझ दिखाई देती थी। चित्र से उसकी उस दुनिया की समझ भी दिखाई देती है जो उसने कभी देखी नहीं। एकदम साफ-साफ। मुझे आश्चर्य हुआ कि जिसने कभी अपनी आँख से कुछ देखा नहीं उसने पेड़ को महसूस कैसे किया? फल को, रंग को। जिसने कोई इमेज नहीं देखी, उसके मन में भी आकृति थी! और तीन रंगों में मौजूद थी। मुझे नहीं पता कि उसने ये रंग माँगे थे या संयोग से ही तीन रंग उठा लिए। उन दिनों ये बच्चे वहाँ चित्र बनाना सीख रहे थे। सबके पास रंग रहते थे। मुझे लगता है कि उसने कोई तीन रंग यूँ ही उठा लिए होंगे। उसे न हरा मालूम था, न जामुनी, न ग्रे। मगर उसने तीन रंग या तीन पेन बदले होंगे। उसने पेड़ के लिए एक ही रंग ग्रे लगाया। पत्तियों के लिए एक ही हरा लगाया। इस तरह से चित्र में रंगों का विभाजन बहुत साफ दिखाई देता है। और पेड़ का आकार भी स्पष्ट दिखाई देता है। इस घटना से मैं यह सोचने पर मजबूर हुआ कि क्या चित्रकला के तत्व जन्मजात होते हैं?



टापू क्या होता है?

अशमीत



टीचर - टापू क्या होता है... कौन बताएगा?

अजीत - सर..सर..सर मैं मैं..।

टीचर - बोलो।

अजीत - सर जी, टापू ज़मीन का एक ऐसा दुकड़ा होता है जिसके हर तरफ पानी होता है। एक तरफ को छोड़ कर।

टीचर - अरे, एक तरफ को छोड़कर...?

अजीत - हाँ सर, ऊपर एक तरफ को छोड़ सब तरफ पानी ही ही तो होता है।

टीचर हँसने लगे। पर मुझे समझ नहीं आया इसमें हँसने की क्या बात है।

जन्मदिन की पार्टी

अनामिका

आज परी का जन्मदिन था। उसके घर में आज बहुत काम थे। इसलिए मैं और माँ उनके घर एक घण्टा जल्दी पहुँच गए। पहुँचते ही माँ रसोई में लग गई और मैं गुब्बारे फुलाने लगी। थोड़ी देर में बच्चे आने लगे। सबने एक से बढ़कर एक कपड़े पहन रखे थे। तभी परी की मम्मी की आवाज़ आई, “दमिया गिन के बताना कितने बच्चे हैं। उतनी ही प्लेट सजा देना... ठीक से गिनना ...कोई बच्चा छूट नहीं जाए।” मैंने “जी” कहा और बच्चे गिनने लगी - एक, दो, तीन, चार,... सोलह...पूरे इक्कीस बच्चे थे। मैंने माँ को इक्कीस प्लेट लगाने को कह दिया। पार्टी शुरू हुई। परी ने केक काटा। सबने खूब तालियाँ बजाई। मैंने भी ताली बजाई। फिर सारे बच्चों को एक-एक प्लेट दी गई। हर प्लेट में केक, गुलाबजामुन और चिप्स थे। एक प्लेट बच गई। परी की मम्मी बोलीं, “अरे दमिया, तुझे ठीक से गिनती भी नहीं आती! बीस ही तो बच्चे हैं।” तभी माँ ने आवाज़ दी और मैं किंचन में चली गई। और सोचने लगी, “गणित तो इनका कमज़ोर लगता है।”



चित्र: तापोषी घोषाल



શોર ઓર કવચા

ઉદયન વાજપેયી

ચિત્ર: સુજાશા દાસગુપ્તા



રાજસ્થાન કે ગાંચ કહાનિયોं કી ખાને થીં। વહાઁ કે હર કદમ પર આપકો એક નર્હ કહાની મિલ સકતી થી। યે એસી કહાનિયાં થીં જો બચ્ચે અપને બુજુર્ગોં સે સુનતે થે। જબ વે ખુદ બુજુર્ગ હો જાતે, વે કિન્હોં ઔર બચ્ચોં કો કહાનિયાં સુનાતે ઔર ઇસ તરહ યે કહાનિયાં સાલોં-સાલ લોગોં કે બીચ ઘૂમતી રહતીં। ઇન કહાનિયોં કો બડે લોગ આપસ મેં ભી સુનતે-સુનાતે થે। ઇન્હેં સુનતે-સુનતે લોગોં કો આનન્દ ભી આતા ઔર ઉનકી સમજી ભી બઢતી રહતી। ઇન કહાનિયોં કો સુનાનેવાળે અપની થોડી-બહુત સમજી ચુપચાપ ઇન કહાનિયોં મેં રખતે જાતે થે। ઇસ કારણ ભી ઇન કહાનિયોં કે ભીતર સમજી બઢતી જાતી થી। એસી હી એક કહાની કર્હ સાલ પહલે મુંબઈ કે એક ચિત્રકાર ને રાજસ્થાન કે કિસી ગાંચ મેં સુની થી। વહ કહાની ઉનકે ભીતર કર્હ સાલોં રહતી રહી। એક બાર ઉનકી મુલાકાત મુજસે હો ગઈ। ઉનકા મન હુઆ કિ વે કર્હ સાલ પહલે સુની વહ કહાની મુજો સુનાએં। મૈને જબ વહ કહાની સુની, મૈં ઠગા-સા રહ ગયા। હમ દોનોં કુછ દેર ચુપ બૈઠે રહે ઔર ઉસ કહાની કે પાત્રોં કો અપને આસપાસ મહસૂસ કરતે રહે।



एक बार एक कवया जंगल के रास्ते जा रहा था। उस इलाके में कहानी कहनेवाले को कवया कहा जाता है। घना जंगल था। हर तरफ ॐ-ॐ-पेड़ों की परछाइयाँ ज़मीन पर पड़ी हुई थीं। घास भी काफी ऊँची हो गई थी। पगडण्डी पर सूखे पत्ते और हरी लताएँ पड़ी हुई थीं। कभी-कभी दूर से बन्दर के चीखने की आवाज़ आती थी। चिड़ियों की आवाज़ हर तरफ थी। अचानक कभी पास ही कहीं साँप का फुँफकारना भी कानों में फैल जाता था और कवया का मन डर से काँपने लगता था। वह डर से बचने के लिए अपने आप को कहानी सुनाता चल रहा था। वह जैसे ही घने जंगल से कुछ बाहर निकला, और उसने राहत की साँस ली, उसने पाया कि उसके सामने जाने कहाँ से एक शेर आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें जैसे ही शेर की आँखों से मिलीं, उसके पूरे शरीर में कँपकँपी छूट गई। हाथ पसीने से भीग गए। उसने अपनी आँखें शेर की ओर से हटा लीं और दूर आकाश में तैरती हुई चील को देखने लगा। शेर उसकी ओर बढ़ने लगा। कवया ने सोचा, अब भागकर जान नहीं बचाई जा सकती। इसीलिए वह वहीं खड़ा रहा। उसने कुछ हिम्मत करके शेर की आँखों में आँखें डालकर झोर-से कहा, “ठहरो!” पहले शेर कुछ समझा नहीं फिर कवया के हाथ के इशारे को देखकर रुक गया। कवया फिर बोला, मुझे मत खाओ!

शेर बोला, “मुझे बहुत भूख लगी है।”

कवया मुस्कराया और बोला, “भूख तो तुम कुछ और खाकर भी मिटा सकते हो। पर मैं तुम्हें ऐसा कुछ दे सकता हूँ जो और कोई नहीं दे सकता।”

शेर चिन्ता में पड़ गया। वह बोला, “तुम मुझे ऐसा क्या दे सकते हो जो और कोई नहीं दे सकता?”

“मैं तुम्हें कहानी सुना सकता हूँ।” कवया ने खुश होकर कहा।

शेर यह सुनकर चौंक गया। उसने ऐसा कुछ कभी सुना नहीं था। वह बोला, “यह कहानी क्या होती है?”

कवया समझ गया कि शेर कुछ देर के लिए अपनी भूख को भूल गया है। इससे उसका हौसला बढ़ गया। वह बोला, “तुम सुन लो, तुम्हें खुद समझ में आ जाएगा कि कहानी क्या होती है।”

शेर की उत्सुकता बढ़ गई। वह फिर बोला, “कुछ तो बताओ?”

कवया बोला, “कहानी दुनिया की सबसे अनोखी चीज़ होती है। खुद दिखती नहीं पर न जाने कितने जीव-जन्तुओं को, पेड़ों, पक्षियों को दिखा देती है। चलो किसी घने पेड़ की छाया में जाकर बैठ जाते हैं। वहीं मैं तुम्हें कहानी सुनाता हूँ।”

कवया और शेर पास ही के बरगद के पेड़ की छाया में बैठ गए। कवया शेर को कहानी सुनाने लगा। शेर पूरे ध्यान से कहानी सुनने लगा। वह कहानी सुनने में इतना दूब गया कि उसे याद ही नहीं रहा कि कुछ ही देर पहले वह भूखा था, कि कुछ ही देर पहले पूरे जंगल में शिकार की खोज में भटकता फिर रहा था। कवया देर तक शेर को कहानी सुनाता रहा। जंगल में अँधियारा घिरने लगा। रात होने के कुछ पहले कवया की कहानी खत्म हो गई। वह उठ खड़ा हुआ। उसे देखकर शेर बोला, “तुम्हारी कहानी सचमुच अनोखी है। मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा पर तुम्हें रोज़ आकर मुझे एक कहानी सुनानी पड़ेगी। अगर तुम नहीं आए तो मैं तुम्हारे घर आकर तुम्हें खा जाऊँगा।”

कवया जान बच जाने से खुश था। उसने जवाब दिया, “मैं रोज़ इसी समय यहाँ आकर तुम्हें कहानी सुना जाऊँगा।”

यह सुनते ही शेर ने ऊँची छलाँग लगाई और देखते ही देखते कवया की आँखों से ओझल होकर जंगल में खो गया। कवया तेज़ी से घर की ओर चलने लगा।

उस दिन के बाद से कवया हर शाम जंगल जाकर शेर को एक कहानी सुना आता। शेर भी कवया के आने के पहले ही बरगद के पेड़ की छाया में बैचैन होता हुआ कवया



का इन्तज़ार करता रहता। जैसे ही उसे दूर से कवया आता हुआ दिखता वह खुशी-खुशी उसके पास पहुँच जाता और उसके साथ चलता हुआ बरगद की छाया में आ जाता। कवया का कहानी सुनाना और शेर का कहानी सुनना कई दिनों तक चलता रहा। कवया नई-नई कहानियाँ बनाकर शेर को सुनाता। शेर उनको सुनकर हैरान रह जाता।

एक दिन शेर बरगद के नीचे बैठा कवया का इन्तज़ार कर रहा था। कवया के आने का समय बीत गया पर कवया नहीं आया। शेर की बेचैनी बहुत बढ़ गई। वह बहुत देर तक जंगल में ही यहाँ से वहाँ दौड़ता रहा। उसे चिन्ता भी हो रही थी। गुस्सा भी आ रहा था। आखिर कवया कहाँ रह गया? कहीं वह भाग तो नहीं गया? कहीं किसी ने उसे खा तो नहीं लिया? चिन्ता और गुस्से में इसी तरह दौड़ते-भागते शेर ने कुछ सोचा और वह कवया के गाँव की ओर चल दिया। रात हो चुकी थी। गाँव के सभी लोग अपने-अपने घरों में सोने के लिए जा चुके थे। शेर कवया के मकान के पास पहुँचा और कूदकर खपरैलवाली उसकी छत पर चढ़ गया। उसने कुछ खपरैलों को हटाया और नीचे कवया के कमरे में झाँका। कवया के बिस्तर के पास एक चिराग जल रहा था। उसकी हिलती रोशनी में पूरा कमरा हिलता हुआ-सा लग रहा था। जब शेर ने ध्यान से देखा तो उसे पता चला कि कवया बिस्तर पर लेटा है और उसके पाँव से खून बह रहा है। वह यह देखकर चिन्तित हो गया और तुरन्त छत से कूदकर नीचे आया और कवया के कमरे का दरवाज़ा खोलकर भीतर चला गया। कवया ने उसकी ओर देखा और बहुत दुख से कहा, “मुझे शाम को चोट लग गई और मैं तुम्हारे पास नहीं आ पाया। मैं सोच ही रहा था कि तुम परेशान हो रहे होगे। पर मैं क्या करता?”

शेर बोला, “तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूँ। मैं इसे चाटकर तुरन्त ठीक कर दूँगा। तुम सुबह तक चलने की हालत में होगे।”

यह कहकर शेर कवया के घाव को चाटने लगा।

कवया जिस बिस्तर पर लेटा था, उसके पास की दीवार पर एक खिड़की थी। खिड़की और कवया के बीच शेर खड़ा था। हवा खिड़की से आकर शेर के शरीर से टकराती और फिर कवया तक पहुँचती थी। शेर के शरीर से उठती गन्ध हवा में घुलकर कवया की नाक तक पहुँच रही थी। कवया शेर से बोला, “तुम वहाँ से हटकर बिस्तर के इस तरफ आ जाओ।”

शेर ने चाटना छोड़कर सिर उठाया और पूछा, “क्यों?”

कवया बोला, “तुम्हारे शरीर से दुर्गन्ध आ रही है।”

यह सुनकर शेर की आँखें भर आईं। उस समय शेर अपने दोनों पंजे बिस्तर पर रखकर कवया की चोट पर झुका था। कवया की यह बात सुनते ही उसने बिस्तर से अपने दोनों पंजे नीचे कर लिए। वह कवया के चेहरे के कुछ पास आकर सोचता हुआ-सा बोला, “मैं अकसर सोचता था कि जैसे हर जानवर एक तरह का होता है, वैसे ही यह आदमी किस तरह का जानवर है? जैसे, गाय घास खाती है और दूध देती है। जैसे, हम शेर लोग शिकार करते हैं और जंगल में दौड़ते-फिरते हैं। उसी तरह आदमी किस तरह का जानवर है? मुझे कभी समझ में नहीं आया। पर अभी, बिलकुल अभी मुझे यह समझ में आ गया है। अगर हम जानवरों को कोई चोट लगती है, हम उसे चाटकर ठीक कर लेते हैं। पर आदमी जो चोट पहुँचाता है, वह ऐसी जगह लगती है जिसे चाटकर ठीक नहीं किया जा सकता।”

कवया चुप रह गया। वह कुछ बोल पाता इससे पहले ही शेर फिर बोला, “आज हम आखिरी बार मिल रहे हैं। मैं जंगल वापस जा रहा हूँ।”

शेर धीरे-धीरे चलता हुआ कवया के दरवाज़े तक पहुँचा। बाहर अँधेरा गहरा गया था। उसने कूदकर बाड़ को लाँघा और तेज़ दौड़ता हुआ घने जंगल में खो गया।



जिन्हें हँसना है
उन्हें लड़ना है
आगे बढ़ना है...

जिन्हें लड़ना है
आगे बढ़ना है
उन्हें मज़बूत होना है

जिन्हें मज़बूत होना है
उन्हें जल्दी जगना है
और जल्दी सोना है

जिन्हें जल्दी सोना है
उन्हें शाम तक थकना है
और जिन्हें थकना है...

वो हँसकर भी थक जाएँगे।

दूर अलोधियों

इरशाद कामिल
चित्र: अतनु राय

हौसला है...
जो रोया नहीं

जो रोया नहीं
वो पत्थर है

जो पत्थर है
वो पहाड़ है

जो पहाड़ है
वो ऊँचा है

जो ऊँचा है
वो हौसला है।



जारी NO

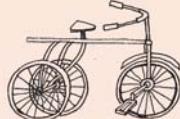
बर्तॉल ब्रेख्ट
चित्र - नबरीना सिंह

बात तब की है जब देश में एक तानाशाह का राज चल रहा था। हर तरफ उसकी मनमानी थी। ऐसे में एक दिन एक एंजेंट मिस्टर एगर के घर में घुस आया। और उनके हाथ में तानाशाह का एक रुक्का थमा दिया। उसमें लिखा था कि जिस भी घर में एंजेंट के पाँव पड़ेंगे वह उनका हो जाएगा। वो जिस खाने की फरमाइश करेंगे, वह पेश किया जाएगा। जिस भी आदमी पर उनकी नज़र पड़ेगी, वह उनका सेवादार हो जाएगा। मिस्टर एगर कुछ नहीं बोले। वो सिर्फ एक ही शब्द बोलना जानते थे - NO।

एंजेंट कुर्सी पर बैठ गया। पहले उसने खाना माँगा। फिर कपड़े धुलवाए। फिर बिस्तर पर लेट गया। और दीवार की तरफ मुँह किए हुए बोला, “मेरे नौकर बनोगे?”

मिस्टर एगर ने उस पर कम्बल ओढ़ा दिया। उसके काग़ज़ात परे रखे। और उसे सोता हुआ देखते रहे। ऐसा सात बरस तक चलता रहा। मिस्टर एगर उसकी खातिरदारी में लगे रहे। वो जो बोलता, पूरा हो जाता। इस दौरान मिस्टर एगर ने अपने मुँह से एक बार भी वो शब्द न निकलने दिया जो वो बोलना जानते थे - NO।

सात साल गुज़र गए। एंजेंट सोते, खाते-पीते, आदेश देते-देते एक दिन मर गया। तब मिस्टर एगर ने उसे एक पुराने कम्बल में लपेटा। उसे घर के बाहर कूड़ेदान में फेंका। बिस्तर को धोया। दीवारों पर सफेदी पोती। एक गहरी साँस ली और बोले - NO.. 





विशाखापट्टनम का ईश्वर

संदीप जोशी



विशाखापट्टनम देश के दक्षिण पूर्व समुद्री तट पर बसा एक सुन्दर शहर है। इसके एक तरफ समुद्र का खारा पानी है तो दूसरी तरफ मीठे पानी की नदियाँ। शान्त और सौम्य शहर। इसे खेती और समुद्र से जुड़े व्यवसाय, दोनों के कारण जाना जाता है।

और यहीं पर ईश्वर रहते हैं...

मार्च के अन्त में आइपीएल के ग्यारहवें सत्र की शुरुआत थी। दिल्ली डेयरडेविल्स का अभ्यास कैंप चालू हो गया था। कैंप के तीसरे दिन अचानक एक छोटे कद का गोल-मटोल लड़का खिलाड़ियों के साथ मैदान पर आया। उसके हाथ में एक विशेष औज़ार था। वह अमरीकी खेल बेसबॉल से उठाया गया औज़ार था। इस औज़ार का इस्तेमाल गेंद को तेज़ी से फेंकने में किया जाने लगा है। तेज़ गेंद खेलने-खिलाने के लिए यह बहुत उपयोगी रहता है। इससे बिना हाथ घुमाए गेंद को तेज़ी से फेंका जा सकता है। यही औज़ार लिए ईश्वर डेयरडेविल्स के बल्लेबाज़ों को प्रैक्टिस कराने विशाखापट्टनम से दिल्ली आया था।

अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट में तेज़ गेंदबाज़ों का बोलबाला रहता है। आइपीएल में सभी देशों के चुनिन्दा तेज़ गेंदबाज़ भाग लेते हैं, लिहाज़ा तेज़ गेंदबाज़ी को खेलने का अभ्यास ज़रूरी हो जाता है। चेहरे पर हँसी और उम्मीद लिए ईश्वर अपना हुनर दिखाने को बेताब दिखा। मई की भीषण गर्मी और उस पर तपती दोपहर। गेंद को 140 किलोमीटर से ज्यादा की रफ्तार से सही दिशा और सटीक टप्पे पर फेंकने के लिए ईश्वर को बुलाया गया था। वह कँधे और उससे

ऊपर तेज़ी से उठती गेंद फेंक रहा था। सही दिशा और टप्पे के साथ। ईश्वर चार घण्टे तक लगातार ऐसे ही तेज़ गेंद फेंकता रहा। एक के बाद एक बल्लेबाज़ थककर पसीने से लथपथ नेट से बाहर आते रहे। लेकिन ईश्वर को थकान का अता-पता न था। उसकी गेंदबाज़ी में कमाल की कला और मेहनत नज़र आ रही थी।

पहले ही दिन के बाद दिल्ली डेयरडेविल्स के टीम प्रबन्धन ने ईश्वर को टीम में लेने का निर्णय ले लिया। सवा महीने के आइपीएल के लिए उसे अच्छा-खासा मेहनताना दिया गया। सभी बल्लेबाज़ उसकी गेंदों को खेलना चाहते थे। भारत के गौतम गम्भीर, ऑस्ट्रेलिया के ग्लेन मैक्स्वेल, इंग्लैंड के जेसन रॉय, न्यूज़ीलैंड के कॉलिन मुनरो सभी ईश्वर की करामाती प्रतिभा से अपने खेल को निखारना चाहते थे। अभ्यास के दौरान ईश्वर की गेंदों के सामने सभी के बल्ले छूटते देखे जा सकते थे। वजह थी - गेंदों की तेज़ी और सही टप्पे। ईश्वर पाँच-छह बल्लेबाज़ों को अकेले ही थका देता था।

तीनीस साल के ईश्वर ने अपने समय में विशाखापट्टनम में ज़िला क्रिकेट खेली है। हर क्रिकेटर की तरह ईश्वर का भी भारत के लिए खेलने का सपना था। आगे क्रिकेट न खेलने पाने का उसको मलाल बैशक रहेगा। मगर अब क्रिकेट खिलाड़ियों को तेज़ गेंद खेलने की प्रैक्टिस कराना ही उनका जीवनयापन का ज़रिया बन गया है। इससे पहले वे आन्ध्रप्रदेश और भारत के लिए खेले वेणुगोपाल राव को तथा अन्य जाने-माने खिलाड़ियों को तेज़ गेंद खेलने का

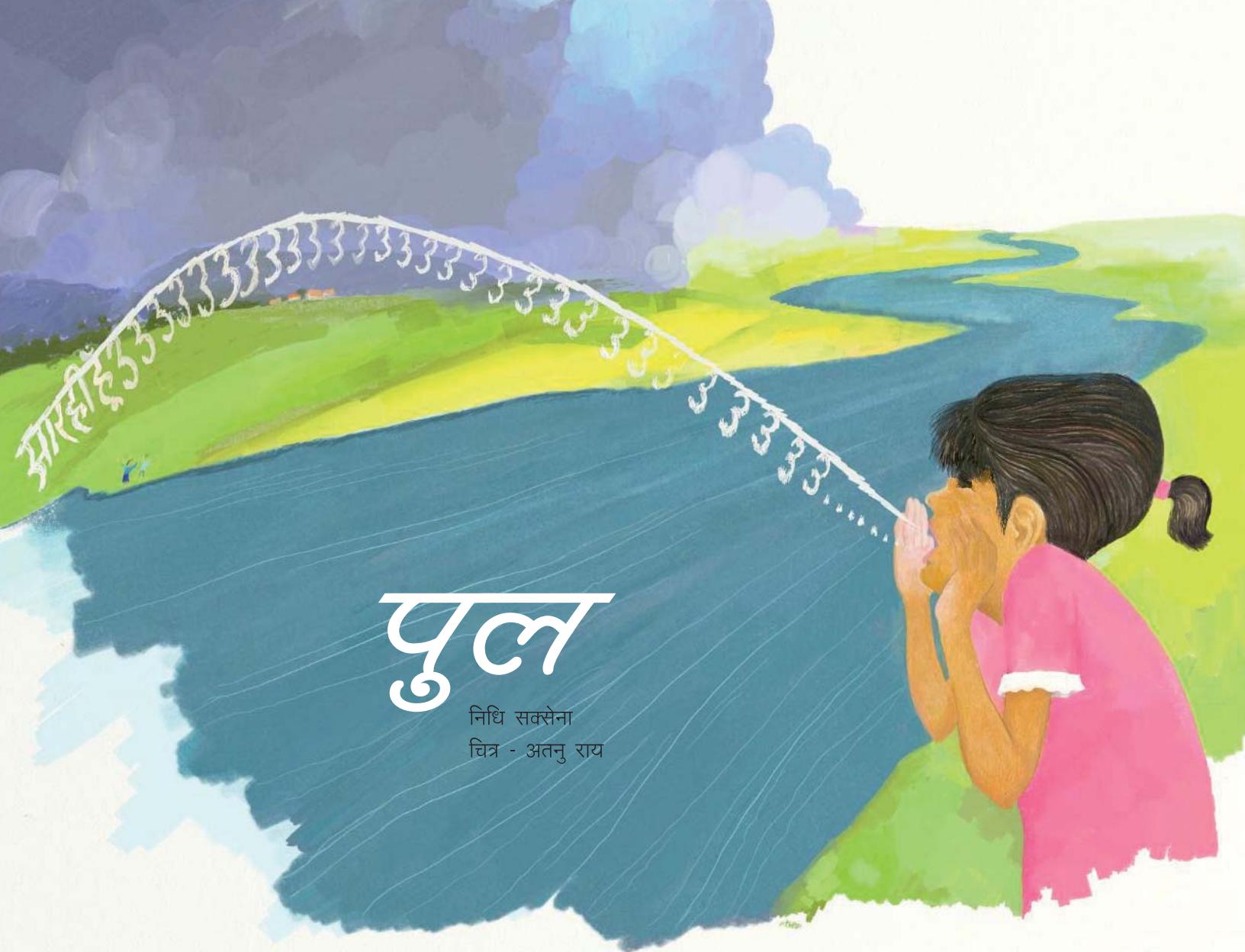


अभ्यास देते रहे हैं। वे आन्ध्रप्रदेश टीम का भी हिस्से रहे हैं। सात-आठ साल पहले उन्होंने विशाखापट्टनम में रणजी मैच खेलने आई मुम्बई की टीम को भी तेज़ गेंद का अभ्यास दिया था। तब के मुम्बई कोच प्रवीण आमरे उनसे प्रभावित हुए थे। आमरे और श्रीराम दिल्ली डेयरडेविल्स के इस साल सहायक कोच थे। उन्हीं दोनों ने ईश्वर को दिल्ली बुलाया और टीम का हिस्सा बनने में मदद की।

अभ्यास सत्र की समाप्ति और आईपीएल के अन्तिम मैच से पहले एक मज़ेदार वाक्या हुआ। अभ्यास के सवा महीने तक बल्लेबाज़ों को ठीक से साँस तक न लेने देनेवाली उछाल-भरी तेज़ गेंद फेंकनेवाले ईश्वर को उन्हीं बल्लेबाज़ों ने पैड-ग्ल्स-हैल्मेट पहनाकर बल्ला पकड़ा दिया। सभी बल्लेबाज़ ईश्वर को वैसी ही तेज़ गेंदों का स्वाद चखाना चाहते थे। बल्लेबाज़ों ने जमकर उछाल भरी तेज़ गेंदें फेंकीं। ईश्वर मज़े से गेंदें झेलता रहा। इस खेल ने माहौल को बेहद खुशनुमा बना दिया।

ईश्वर अब विशाखापट्टनम लौट गया है। और आराम फरमा रहा है। अगले साल जाने कौन-सी टीम इनकी तेज़ गेंदें झेलेगी! ईश्वर न जाने...!





୪୮

निधि सक्सेना
चित्र - अतनु राय

खेलने की जगह घर के पास ही थी। घर नदी के पास था। पढ़ने की जगह दूर थी। दूर नदी के पार था। लारा के दोस्त नदी के पार से पुकारते, “लारा आओ।” तब दोस्तों की ओर से बढ़ते हुए ‘ओ’ का एक पुल बन जाता। जितना लम्बा ‘आओ’ का ‘ओ’ होता, पुल उतना ही लम्बा बनता। जैसे ‘आओ’ के बुलावे के साथ वो लेने भी आए हों। लेकिन पुल जितना भी लम्बा हो नदी के इस पार नहीं पहुँच पाता। कई बार कई दोस्त मिलकर आवाज़ लगाते, “लारा आओ!!!!!” तो बहुत लम्बा पुल बनता। पुल कितना भी लम्बा हो लारा तक नहीं पहुँचता। भले ही थोड़ा-सा बचा रहे, बचा ज़रुर

रहता। फिर लारा कहती “आई।” तब लारा की ओर से भी एक पुल बनता। ‘आई’ की ‘ई’ का पुल। बोली गई ‘ई’ कितनी ही छोटी हो, पुल इतना ही बड़ा बनता कि उस ओर से लेने आए ‘ओ’ वाले पुल से जुड़ सके।

कभी-कभी उधर से ‘आओ’ की आवाज़ नहीं आती और लारा को नदी पार जाना होता। तो लारा नदी किनारे खड़े होकर खुद ही कहती, “आ रही हूँउउउउउउउ” लारा कितना भी छोटा हूँउउउउ कहे पुल उतना बड़ा बनता कि उस पर चलकर दूसरे किनारे तक पहुँचा जा सकता था।



गीत सुन नहीं पाता था/
वह एक दिन मिला बातूनी बिट्टी से



आै बस,
इतना ही कह पाया

बिट्टी तपाक से बोली, तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो गीत!

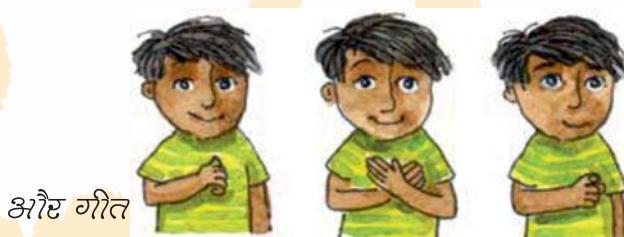


बिट्टी ने पूछा, क्या तुम भी मुझे चाहते हो?



पह गीत
बस इतना ही कह पाया

आै बिट्टी अलविदा गीत! अलविदा! अलविदा! कहती गई



यही बस यही यही कहता गया

बिट्टी चली गई, बिना यह जाने



का मतलब होता है
मैं तुम्हें बहुत प्याए करता हूँ



प्यालु लकड़वाघा

छावनी के साथ जंगल लगता था। जिसमें लकड़बग्धे रहते थे। रात में वे छावनी में घुस आते थे। बैरकों के बाहर फैकी गई जूठन खाते रहते थे। कोई आवारा कुत्ता मिल जाए तो वे उसे भी छोड़ते नहीं थे। उन्होंने छावनी के कई कुत्ते खा लिए थे। फौज के एक डॉक्टर ने एक पिल्ला पाल रखा था। वे उसे बड़ी हिफाज़त से रखते थे। वे उसे बहुत प्यार करते थे। रोज़ सुबह पिल्ला डॉक्टर के साथ खेलकर लाड़-प्यार जताया करता था। एक सुबह पिल्ला नज़र नहीं आया। अहाते के एक कोने में इमली का पेड़ था। उसके नीचे लकड़बग्धे के पैरों के निशान दिखाई दिए। सभी को लगा कि लकड़बग्धा पिल्ले को उठा ले गया है।

फौज के कुछ जवान उसकी तलाश में निकले। वो लकड़बग्धे को मारकर छावनी के बाकी कुत्तों को बचाना चाहते थे। बहुत खोजने के बाद जवानों को लकड़बग्धे का भट मिल गया। उन्होंने उसे गोली मार दी। फिर वे उसके भट की खोज-खबर लेने लगे। उनका इरादा उसके जोड़ीदार को तलाशना था। वे उसे भी खत्म कर देना चाहते थे।

भट की छानबीन से उन्हें इतना तो अन्दाज़ा हो गया था कि भट के अन्दर एक और जीव है। वे उसे बाहर निकालने का उपाय सोचने लगे। मैदान में भागते हुए जानवर पर निशाना साधना आसान होता है।



रमेश बेदी

चित्र: अतनु राय

जवान झाड़ियों में छिपकर

बैठ गए और उसके

निकलने का

इन्तज़ार करने

लगे।

थोड़ी देर

बाद एक छोटे-

से जानवर ने

भट से बाहर

झाँका। भट के

मुँह पर परछाई

पड़ रही थी। अँधेरे

में उन्हें इतना तो

अन्दाज़ हो गया कि वह

कोई बच्चा ही है। एक जवान को लगा कि उसकी शक्ल लकड़बग्धे जैसी नहीं है। सब जवानों की आँखें भट के मुँह पर टिकी थीं।

एक जवान फुसफुसाया, “दोस्त! बच्चा है तो मारते क्यों हो? ज़िन्दा पकड़ लो। साहब को दे देंगे तो वे खुश हो जाएँगे। इसे पाल लेंगे।”

कुछ देर के इन्तज़ार के बाद वो बाहर निकल आया। सब एक साथ चिल्ला उठे, “कुत्ता!” सचमुच वह पिल्ला निकला। साहब का पिल्ला। लकड़बग्धे को बड़ा खूँखार माना जाता है। शिकारियों का कहना है कि वह जानवरों को तड़पा-तड़पाकर मारता है। अचरज था कि इस लकड़बग्धे ने पिल्ले को नहीं मारा था। पता नहीं क्यों? शायद लकड़बग्धे के अपने बच्चों को किसी ने मार दिया था। और उसके मन में उनके लिए अब भी मोह बना हुआ था। शायद इसीलिए...



साभार जंगल की बातें, वाणी प्रकाशन





ખાટની

મુદિત શ્રીવાસ્તવ
ચિત્ર: તાપસ ગુહા

ટિંકૂ ઔર બુલબુલ રોજ સુબહ જલ્દી ઉઠને મેં ના-નુકુર કરતે થે। લેકિન ગર્મિયોં કી છુટિટયાં આતે હી મામલા એકદમ ઉલટ જાતા। ઇધર સુબહ હોતી, ઉથર વો પાપા કે સાથ દૂધ લાને કે લિએ નિકલ પડતે। મનમોહન અંકલ કે પાસ બહુત સારી ગાયેં થીં। અંકલ ગાય દુહતે ઔર દોનોં ટકટકી બાંધે દૂધ કી ધાર કા થનોં સે નિકલકર બાલટી મેં ગિરના દેખતે। ધાર ગિરને કી આવાજ દોનોં કો બડી મજેદાર લગતી।

વો દેખતે રહતે, દેખતે રહતે ઔર બાલટી દૂધ સે ભર જાતી। સબકે ડિબ્બોં મેં દૂધ ડાલતે મનમોહન અંકલ ટિંકૂ-બુલબુલ કે પાસ આતે ઔર કહતે, “હ્યાં હ્યાં! પિયો પિયો રોજ દૂધ પિયા કરો” ઔર અગલેવાળે કી ઓર બઢ જાતો। ઔર દૂધ કા ડિબ્બા ઉઠાકર ટિંકૂ, બુલબુલ ઔર પાપા ઘર કા રુખ

કરતો। લौટતે હુએ વો ખેતોં કી તરફ સે આતે। રાસ્તે મેં મનમોહન અંકલ કી ગૌશાલા ઔર બગીચા પડતા થા। વહું આમ, અમરુદ, બેર ઔર બહુત સારે ફલોં કે પેડું થે। પેડોં પે લટકે બડે-છોટે કચ્ચે-પવકે આમ ટિંકૂ ઔર બુલબુલ કી ઓર જૈસે અકડ સે દેખતે। માનો ચિંદ્રા રહે હોં, “અરે યું દૂર સે ક્યા દેખતે હો, દમ હૈ તો હમેં તોડ કે દિખાઓ।” ટિંકૂ ઔર બુલબુલ એક-દૂસરે કો દુખી નજરોં સે દેખતે, ફિર ઉન લટકતે આમોં કી ઓર લલચાઈ નજરોં સે। આમ ઉન દોનોં કી પહુંચ સે દૂર થે। ઔર ઉન્હેં તોડને પર મનમોહન અંકલ કી ડાંઠ યા માર પડ સકતી થી। ચલતે-ફિરતે દોનોં આમ તોડને કે લિએ પથર ઉઠા તો લેતે, પર આમ ન તોડ પાને પર ઉન્હેં અપને મન પર પથર રખ લેને પડતે।

એક દિન પાપા શહર સે બાહર ગા હુએ થે। માઁ ને ઉન્હેં દૂધ લાને કો કહા। દોનોં રોમાંચિત હો ગાણ। ઉન્હોંને ફટાફટ ડિબ્બા ઉઠાયા। અંકલ કે યહું સે દૂધ લિયા ઔર ઉસી



खेतवाले रास्ते की तरफ बढ़ गए। एक-दूसरे से कुछ भी बोले बगैर वो समझ चुके थे कि आज इन अकड़ू आमों को मज़ा चखाकर रहेंगे। यानी आज उन आमों को मुँह तोड़ जवाब, उन्हें तोड़ कर दिया जाएगा। दूध का डिब्बा लिए-लिए वे चुपके-से बगीचे में घुसे। टिंकू अपनी चप्पलें उतारकर सबसे छोटेवाले आम पे चढ़ गया। बुलबुल आसपास नज़र रखे थे। टिंकू आम तोड़-तोड़कर नीचे फेंक रहा था और बुलबुल उन्हें बटोरती जा रही थी। तभी एक आवाज़ आई, “कौन है रे वहाँ!” शायद बगीचे का रखवाला दलचा दाऊ था। यूँ तो उसे कम दिखाई देता था पर जाने कैसे उसने पेड़ पर चढ़े टिंकू को देख लिया था। शायद उसे ज़मीन की चीज़ों कम और पेड़ों की चीज़ें ज़्यादा दिखाई देती हों?

टिंकू और बुलबुल दोनों घबरा गए। टिंकू झट पेड़ से नीचे कूदा। पैंट की जेबों में फटाफट जितने हो सके आम भरे, चप्पलें उठाई और दौड़ लगा ली। बुलबुल ने भी दूध का डिब्बा उठाया और भाग ली। आमों के वज़न से टिंकू की पैंट निपचने लगी थी। एक हाथ से अपनी पैंट पकड़े और दूसरे हाथ में चप्पलें लटकाए वो भागता रहा। बुलबुल भी डिब्बा

लिए भाग रही थी। खेत का कुत्ता भींकते हुए उनके पीछे लगा था। दलचा दाऊ भी एक मोटा-सा डण्डा लिए चिल्लाते हुए इनके पीछे लगे थे। टिंकू और बुलबुल की धड़कने उनके पैरों से भी ज़्यादा तेज़ दौड़ रही थीं। दोनों के कुत्ते की काट और दलचा दाऊ के डण्डे के अलावा मम्मी की डाँट का भी डर सताने लगा था। थोड़ी देर बाद दलचा दाऊ और वो कुत्ता तो रुक गए पर दोनों में से किसी ने भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वो दौड़ते रहे, दौड़ते रहे और सीधा घर में घुसकर ही रुके। पर दोनों की धड़कनें अभी भी दौड़ रही थीं।

बुलबुल ने दूध का डिब्बा मम्मी को दिया। मम्मी ने उसे खोला, “अरे, यह क्या? इतना-सा दूध?” मम्मी ने कहा।

फिर मम्मी ने टिंकू की निपचू पैंट की जेब से झाँक रहे डरे-सहमे हाँफ रहे आमों को देखा और सारा माजरा समझ गई। ज़रा-से बचे दूध ने मम्मी को गुस्सा तो बहुत दिलाया पर वो आँखें तरेरकर रह गई!

शाम तक पापा भी आ गए थे। उस दिन शाम की चाय में दूध तो नहीं था पर हाँ, रात के खाने में चटपटी चटनी सबने चटखारे लेकर खाई! 

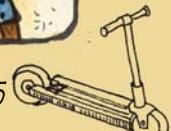


चित्र - अतनु राय



गोल और धरती

नेहा बहुगुणा
चित्र: प्रोइति राय





जायरी अंश

किताब - जब आँख खुल गई

लेखक - कृष्ण बलदेव वैद

प्रकाशक - राजपाल एण्ड संस

कीमत - 262 रुपए

मक्खी और मच्छर का अन्तर्

कृष्ण बलदेव वैद
चित्र: तापोषी घोषाल

मक्खी को कभी मैंने मच्छर की तरह बेमक्सद उड़ते नहीं देखा। मक्खी तंग करने के लिए तंग नहीं करती जबकि मच्छर अक्सर ऐसा करता महसूस होता है। मक्खी को हाथ धोते रहने की बीमारी है, मच्छर के हाथ हैं ही नहीं। मक्खी ज़िद्दी तो है लेकिन बेवकूफ भी कम नहीं। मच्छर की ज़िद में इंसानी दुश्मनी के संकेत मिलते हैं। मक्खी डंक नहीं मारती, मच्छर डंक मारता है। मक्खी को सर खुजलाने की बीमारी भी है, मच्छर बेसरपैर का जीव है। चींटी, हिन्दुस्तानी चींटी, इन दोनों की अपेक्षा शरीफ है, मेहनती है, कम तकलीफदेह है। वह जब काटती भी है तो लगता है कचोट रही हो। अगर मक्खी और मच्छर में से चुनाव करना पड़े तो? खुदा इस इम्तहान में दुश्मन को भी न डालो।





इंडोनेशिया के जज

चित्र: चन्द्रमोहन कुलकर्णी

मरज़ुकी एक मामले की सुनवाई कर रहे थे। मामला था एक बूढ़ी औरत द्वारा की गई चोरी का। बूढ़ी औरत ने अपना गुनाह कबूल कर लिया था कि उसने एक बाग से कुछ माण्ड चुराई थी। उसने गिड़गिड़ाते हुए जज से प्रार्थना की, “जज साहब, मैं बहुत गरीब हूँ। मेरा बेटा बीमार है। मेरा

पोता बहुत भूखा था। इसलिए मजबूरन चोरी कर बैठी।” बाग का मैनेजर बोला, “जज साहब, इसे कड़ी सज़ा दो ताकि दूसरों को नसीहत मिले।”

जज ने सारे पेपर जाँच करने के बाद, नज़र ऊपर उठाई और बूढ़ी औरत को कहा, “मुझे बहुत दुख है, परन्तु मैं कानून से नहीं हट सकता। इसलिए, तुम्हें कानून के तहत सज़ा ज़रूर मिलेगी। कानून में तुम्हारे इस अपराध की सज़ा है एक सौ डॉलर। और यह जुर्माना ना देने पर ढाई साल की जेल।”

बूढ़ी औरत रोने लगी। वो जुर्माना नहीं भर सकती थी। तब जज साहब ने अपने सिर से टोप उतारा और उसमें 11 डॉलर डालकर बोले, “सच्चे न्याय के लिए, जो लोग इस अदालत में हाज़िर हैं वो हर एक साढ़े पाँच डॉलर जुर्माने के तौर पर दें। शहर के नागरिक के रूप में सबका जुर्म है कि क्यों एक मासूम बच्चा भूखा रहा और इस बूढ़ी गरीब औरत को चोरी करने पर मजबूर होना पड़ा। कोर्ट के रजिस्ट्रर को हिदायत है कि वो सब उपस्थित लोगों से ये जुर्माना लें।”

बाग के मैनेजर को मिलाकर सबसे 350 डॉलर की रकम इकट्ठा हुई। इसमें से जुर्माने की रकम काटने के बाद, शेष बचे 250 डॉलर उस बूढ़ी औरत को दे दिए गए।



एक तश्तरी में थोड़ा पानी भरा है। पानी में एक सिक्का रखा है। तुम्हें अपनी उँगलियों से सिक्के को पानी से निकालना है। पर दो शर्तें भी हैं - तश्तरी हिलनी नहीं चाहिए और उँगलियाँ भी गीली नहीं होनी चाहिए।



आज से करीबन दो सौ साल पहले महान शायर ग़ालिब का जन्म हुआ था। और मृत्यु हुई 1869 में। इसी साल (यानी 1869 में) ग़ाँधीजी का जन्म हुआ था। ग़ाँधीजी का जन्म हमारे देश के 1947 में आज़ाद होने के 80 वर्ष पहले हुआ था। ग़ालिब आगरा में पैदा हुए थे। छोटी उम्र में ही वे अपने परिवार के साथ दिल्ली में बस गए थे। अपनी मृत्यु तक वे इसी शहर में रहे।

ग़ालिब ने बहुत-सी कविताएँ लिखीं। ये कविताएँ क्लासिकल फारसी भाषा में हैं। क्लासिकल फारसी आधुनिक ईरान में बोली जानेवाली फारसी से थोड़ी अलग है। ग़ालिब जिस फारसी में लिखते थे उसका इस्तेमाल भारत के एक बहुत बड़े हिस्से में सरकारी काम-काज में होता था। मुगल, अँग्रेज़ और अनेक राजा इसी में काम करते थे। जाने-माने कई लेखक कविताएँ, इतिहास, कहानियाँ और अपनी जीवनियाँ इसी फारसी में लिखते थे।

ग़ालिब का असल नाम, असदुल्लाह था। ग़ालिब उनका उपनाम था (पेन-नेम) था। ‘ग़ालिब’ का अर्थ है विजयी या विजेता। पेन-नेम लेखक स्वयं अपने लिए चुनते हैं, किसी ब्राण्ड-नेम या लेबल की तरह। उनकी इच्छा रहती है कि पाठक उन्हें इसी नाम से जानें। उनकी रचनाओं को इसी नाम से बेचा जाता है। प्रसिद्ध लेखक मुँशी प्रेमचन्द का मूल नाम धनपत राय था। उन्होंने प्रेमचन्द उपनाम अपनाया। यही नाम उनकी पुस्तकों पर छपा रहता है। ज़्यादातर लोग उन्हें प्रेमचन्द के नाम से ही जानते हैं।

फारसी और उर्दू कवियों में भी उपनाम चुनने की परम्परा रही है। यह नाम उनकी हर कविता में कम से कम एक बार आता ही है। एक तरह से, यह नाम उनकी कविता पर लगे लेबल जैसा होता है। जैसे,

पूछते हैं वो कि ग़ालिब कौन है
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या

इन पंक्तियों का क्या अर्थ है? एक कविता के अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। स्कूल में जो कविताएँ आपने सीखी

ग़ालिब

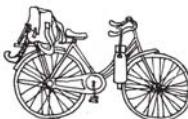
अमर फारकी



हैं उनमें आपकी कम से कम एक पसन्दीदा कविता तो होगी ही। क्या आपको भी उसका वही अर्थ लगता है जो स्कूल में समझाया गया था?

ग़ालिब दिल्ली के शाहजहानाबाद इलाके में रहते थे। शाहजहानाबाद की योजना मुगल बादशाह शाहजहाँ ने बनाई थी। और इन्हीं के शासन में उसका निर्माण हुआ। शाहजहानाबाद ऊँची-बड़ी दीवार से घिरा था और इसमें बड़ी-बड़ी मण्डियाँ व बाज़ार थे। बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं, खूबसूरत घर थे। शाहजहानाबाद की सबसे विशाल इमारत शाहजहाँ का शाही महल था, जिसे लाल किला कहा जाता है। वही लाल किला जहाँ स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर भारत के प्रधान मंत्री राष्ट्रीय झण्डा फैराते हैं और फिर भाषण देते हैं।

ग़ालिब का घर शाहजहानाबाद की बल्लीमारान नामक कॉलोनी में था। बल्लीमारान, चाँदनी चौक के पास है। ग़ालिब के समय में चाँदनी चौक एक बहुत बड़ा बाज़ार था। दिल्ली का सबसे शानदार बाज़ार। अभी भी यह बहुत बड़ा



غائب



और भीड़-भाड़वाला बाज़ार
है। यहाँ कपड़ों, मिठाइयों,

बर्तनों, जूतों, मसालों और खिलौनों की अनेक दुकानें हैं।
ग़ालिब का घर आज एक छोटा-सा संग्रहालय है। चाँदनी
चौक से ईरिक्षा से बल्लीमारान में ग़ालिब के घर पहुँचना
आसान है। यह लाल किले से बहुत दूर नहीं है।

बस कि लेता हूँ हर महीने कर्ज़
और रहती है सूद की तकरार
मेरी तनख्वाह में तिहाई का
हो गया है शरीक साहूकार

ग़ालिब बड़ी गरीबी में रहे। उनके पास साधनों की बहुत
कमी थी। पैसे की ज़रूरत बनी रहती थी। यह उनके हुनर
का कमाल था कि बहुत से युवा कवि उनके पास अपने
लिखे पर सलाह लेने आते थे। मुगल बादशाह बहादुरशाह
ज़फर ने तो ग़ालिब को अपना साथी बना लिया था। ज़फर
खुद भी उम्दा शायर थे। वे उर्दू में लिखते थे। ग़ालिब के
सुझाव उनकी कविता को और खूबसूरत बना देते थे।

ग़ालिब और उनकी बीवी उमराओ को बच्चों से लगाव
था। उनके अपने कोई बच्चे नहीं थे।

आजकल की तरह, ग़ालिब के समय में भी बहुत-से
लोग दो-तीन भाषाएँ बोल-पढ़ लेते थे। ग़ालिब फारसी व
उर्दू जानते थे। वे ब्रजभाषा से भी परिचित थे जो आगरा
और उसके आसपास बोली जाती थी। यहीं ग़ालिब का
बचपन बीता था। उनके समय में उर्दू और हिन्दी में कोई
खास अन्तर नहीं था। आज भी, आम बोलचाल वाली उर्दू व
हिन्दी में कोई खास अन्तर नहीं है। दोनों भाषाएँ इतनी
समान थीं कि उनके लिए एक साझा नाम प्रयोग होता था -
हिन्दुस्तानी। भाषाएँ बनी-बनाई या स्थायी नहीं होती हैं। वे
लगातार बदलती रहती हैं। उनमें कुछ नए शब्द जुड़ जाते हैं,

हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया
पर याद आता है
वो हर इक बात पे कहना
कि यूँ होता तो क्या होता!

कुछ शब्दों का
प्रयोग समाप्त हो
जाता है। लोग
इन शब्दों के
मूल अर्थ भूल
जाते हैं।

ग़ालिब ने उर्दू में भी लिखा। फारसी जाननेवालों की
तुलना में उर्दू समझनेवाले और उसका मज़ा लेनेवाले कहीं
ज़्यादा थे। ग़ालिब को उर्दू में अपने दोस्तों को पत्र लिखने का
बड़ा शौक था। डाक-खाना उनके घर के पास ही था। उस
समय डाक-टिकट व डाक-खाने नए-नए आए थे। पत्र एक से
दूसरी जगह बहुत जल्दी पहुँच जाते थे। दिल्ली से भेजा खत
दो दिन में आगरा पहुँच जाता था। पत्र लिखना ग़ालिब के
लिए आदत बन गई थी। एक दिन में वह कई-कई पत्र लिख
डालते थे। ये इतनी खूबसूरत भाषा में होते थे कि उनके
दोस्त उन्हें सम्भाल के रखते थे। और छपवाते थे।

ग़ालिब का कहन और भाषा इतनी ताज़ा थी कि आज
भी उनके शेर हमें खुश कर जाते हैं। आज भी हमें उनके
शेरों से इतना प्रेम है।





चूहों की आजादी के लिए
बिल्लियाँ रैली निकाल रही हैं

आवाज़ लगार दिल से हर घुसा निकले बिल से

- अभा बिली सं

आकल्पन: सुशील शुक्ल
चित्र: प्रोइति रॉय



अंजीर

के फल और फूल

गणेशाराम



एक दिन अंजीर खाते-खाते मेरे एक दोस्त ने पूछा, बताओ तो कि मेरे हाथ में आने से पहले इसके जीवन में क्या-क्या घटा होगा? पहले तो बड़ा अटपटा सवाल लगा। पर जब इसका जवाब तलाशने बैठा तो एकदम अनोखी कहानी पता चली - अंजीर के बनने की कहानी।

वही सुनाता हूँ...

आम की तरह, अंजीर की भी कई किस्में हैं। अंजीर एक ऐसा फल है जिसे हम ताज़ा भी खा सकते हैं और सुखाकर भी। क्या तुम्हें कोई और ऐसा फल याद आता है जो इन दोनों तरह से खाया जा सकता हो?

अंजीर का पेड़

अंजीर के पेड़ पर फूल दिखाई नहीं देते। अगर तुम अंजीर के पेड़ पर नज़र रखोगे तो पाओगे कि साल में किसी एक समय पर, यह सैकड़ों सख्त, छोटे, हरे-हरे अंजीर जैसे फलों से लद जाता है। ये मुलायम होने और पकने तक पेड़ पर लगे रहते हैं। पकने पर या तो वे खा लिए जाते हैं या फिर गिर जाते हैं। तो फिर अंजीर के फूल कहाँ होते हैं?

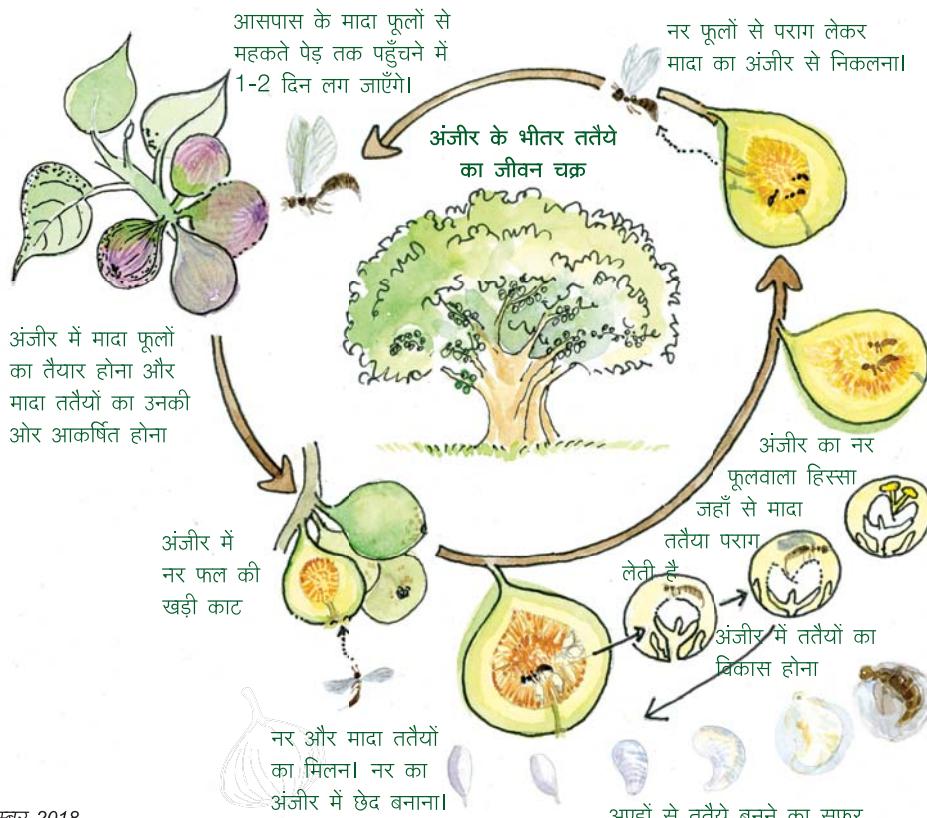
अंजीर के फूल अंजीर के अन्दर ही होते हैं। मान लो कि तुम्हारे पास पीले रंग का एक फूला हुआ गुब्बारा है। और तुमने इस पर सैकड़ों छोटे-छोटे लाल बिन्दु बना दिए हैं। तुम इसकी हवा निकाल कर गुब्बारे के अन्दर वाले हिस्से को पलट कर बाहर ले आते हो और इसे फूला देते हो। तो

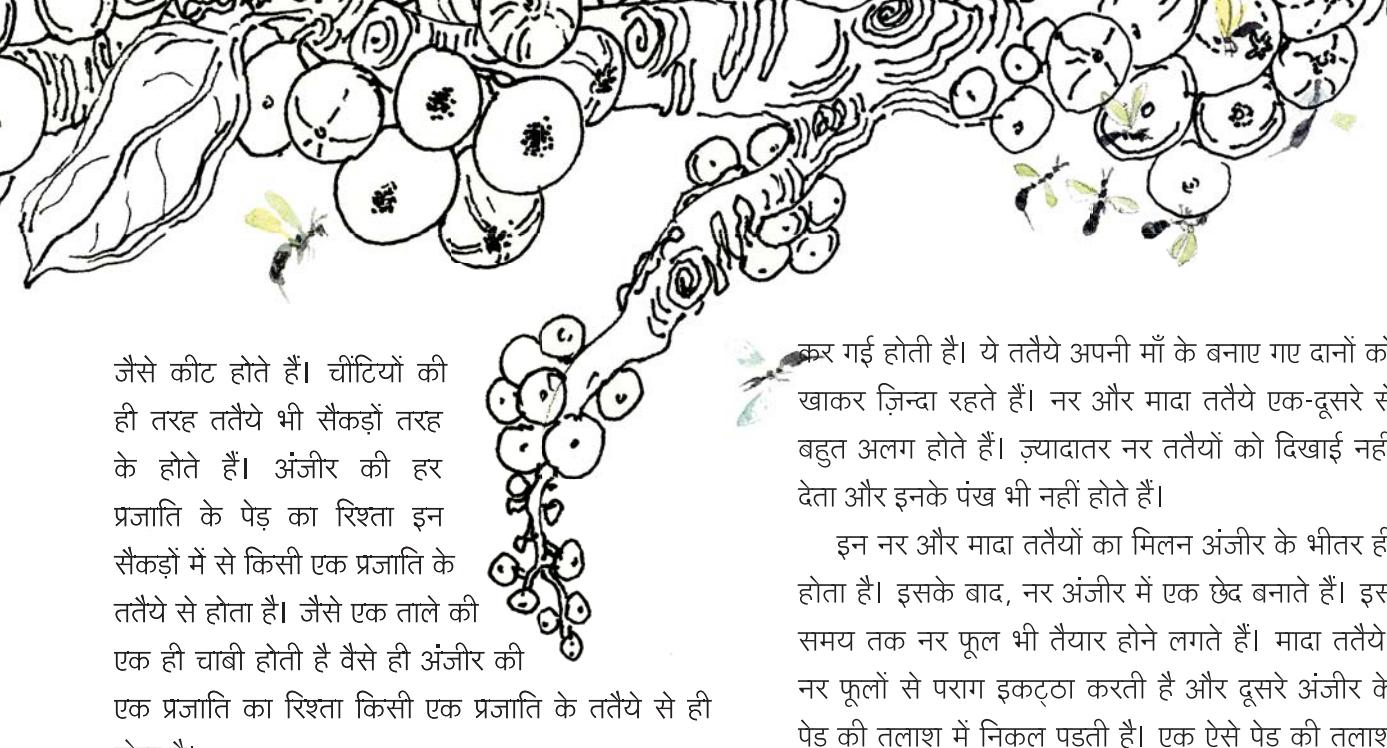
ये फूला गुब्बारा अंजीर हुआ और उसमें बने लाल बिन्दु अंजीर की फूल हैं।

अंजीर के फल की भीतरी दीवार में सैकड़ों छोटे-छोटे फूल होते हैं। सभी अंजीर, चाहे उनका माप, आकार या रंग कैसा भी हो, उनके ऊपर एक छोटा-सा सुराख ज़रूर दिखाई देगा। यह अंजीर का खास डिज़ाइन है। यह डिज़ाइन करीब आठ करोड़ साल पहले उभरा था और आज भी हम सबको अपनी महीनता और जटिलता के कारण चकित कर जाता है।

इस सुराख की कहानी क्या है?

हर अंजीर के पेड़ का एक खास तरह के ततैये (wasp) से करीबी और अनोखा रिश्ता होता है। ततैये छोटे-छोटे चींटी





जैसे कीट होते हैं। चीटियों की ही तरह ततैये भी सैकड़ों तरह के होते हैं। अंजीर की हर प्रजाति के पेड़ का रिश्ता इन सैकड़ों में से किसी एक प्रजाति के ततैये से होता है। जैसे एक ताले की एक ही चाबी होती है वैसे ही अंजीर की एक प्रजाति का रिश्ता किसी एक प्रजाति के ततैये से ही होता है।

अंजीर के पेड़ पर, नर और मादा, दोनों तरह के फूल होते हैं। ये फल के अलग-अलग हिस्से में होते हैं। मादा फूल पहले तैयार हो जाते हैं। और अपनी खुशबू से खास तरह के ततैयों को आकर्षित करते हैं।

इन फूलों की खुशबू से आकर्षित होकर मादा ततैया पराग समेत अंजीर के पेड़ पर पहुँच जाती है। ततैये इनने छोटे होते हैं कि सुई की आँख में से भी निकल सकते हैं पर अंजीर के फल का छेद उससे भी छोटा होता है। इसलिए ततैये किसी तरह उन छेदों में घुसते हैं। इससे बहुत बार इनके पंख टूट जाते हैं।

एक मादा ततैये के छेद में घुस जाने के बाद अंजीर अपना छेद बन्द कर देता है ताकि कोई और ततैया न आ सके। अंजीर के अन्दर पहुँचकर मादा ततैया अपने समय से अण्डे देती है और साथ लाए पराग को मादा फूलों पर झाड़ देती है। यह मादा ततैये के जीवन का आखिरी पड़ाव होता है। मरने से पहले, वह एक रस छोड़ती है जो फूल कर एक दाना बन जाता है। इसके बाद मादा ततैया मर जाती है।

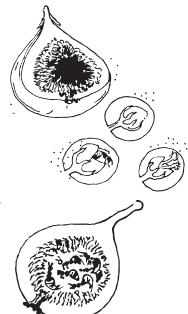
नन्हे ततैये पैदा होने पर अपनी माँ से नहीं मिल पाते। लेकिन उनका जन्म एक तरह के परीलोक में होता है, जहाँ उनके खाने का और ज़िन्दा रहने का इन्तज़ाम उनकी माँ

कर गई होती है। ये ततैये अपनी माँ के बनाए गए दानों को खाकर ज़िन्दा रहते हैं। नर और मादा ततैये एक-दूसरे से बहुत अलग होते हैं। ज़्यादातर नर ततैयों को दिखाई नहीं देता और इनके पंख भी नहीं होते हैं।

इन नर और मादा ततैयों का मिलन अंजीर के भीतर ही होता है। इसके बाद, नर अंजीर में एक छेद बनाते हैं। इस समय तक नर फूल भी तैयार होने लगते हैं। मादा ततैये, नर फूलों से पराग इकट्ठा करती है और दूसरे अंजीर के पेड़ की तलाश में निकल पड़ती है। एक ऐसे पेड़ की तलाश जिसके मादा फूल तैयार हो गए हैं।

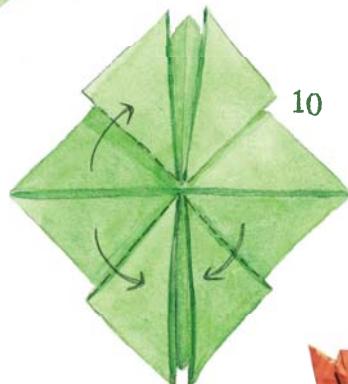
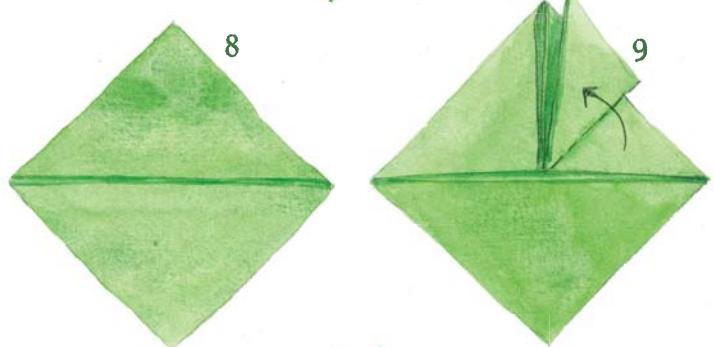
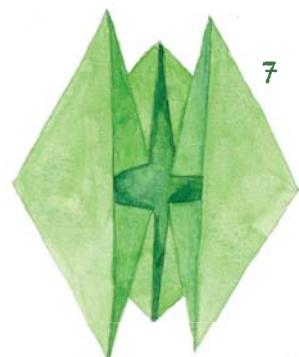
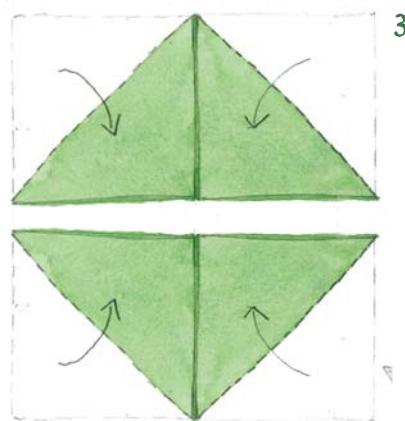
हम जानते हैं कि आम गर्मियों में आता है और सन्तरे सर्दियों में। पर अंजीर में फल और फूल आने का कोई एक मौसम नहीं होता। साल भर इन पेड़ों पर फल या फूल बनने की कोई न कोई गतिविधि चलती रहती है। ततैयों का जीवन छोटा होता है। ज़्यादा से ज़्यादा दो महीनों का। अगर सभी अंजीर एक ही साथ फूलने लगेंगे तो मादा उन सबको पराग कैसे पहुँचाएँगीं। शायद इसीलिए अंजीर के पेड़ साल-भर बारी-बारी से फूलते हैं ताकि ततैये उनके आसपास मण्डराते रहें और उनके लिए खाना और नन्हे ततैयों को पनपने के लिए जगह कम न पड़े।

अफ्रीका के घने जंगलों में अंजीर को पेड़ों की रानी भी कहा जाता है। साल भर ये पेड़ फलते रहते हैं। कभी-कभी तो चिड़ियों और जानवरों को खाने के लिए जंगल में केवल अंजीर ही मिलता है। इसके फल बन्दर, गिलहरियाँ और सैकड़ों तरह की चिड़ियाँ और कभी-कभी हाथी भी खाते हैं। अंजीर का पेड़ कई प्राणियों के जीवन का आधार है।

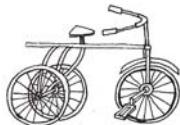


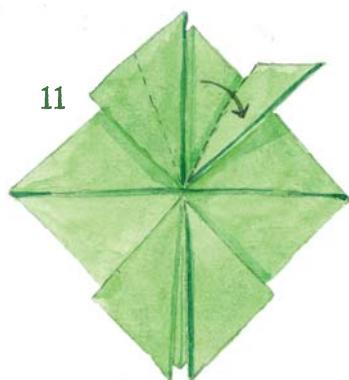


मेंटक कूदा गुप्प



चित्र: तापोषी घोषाल

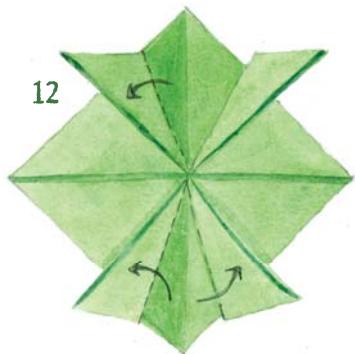




11

प्रसिद्ध कवि अज्ञेय ने एक हाइकू कहा है -

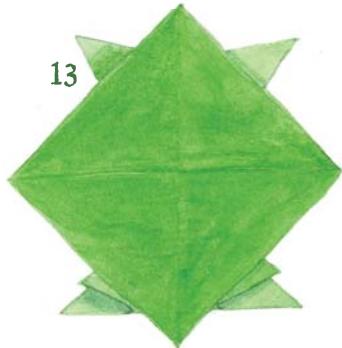
तोल्न पुराना
मेंठक कूदा
गुण्ण...।



12

कवि नरेश सक्सेना ने इसे यूँ आगे बढ़ाया है -

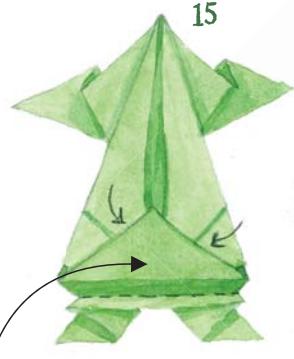
पानी सौंपा
मधुली डाँटे
चुण्ण...।



13

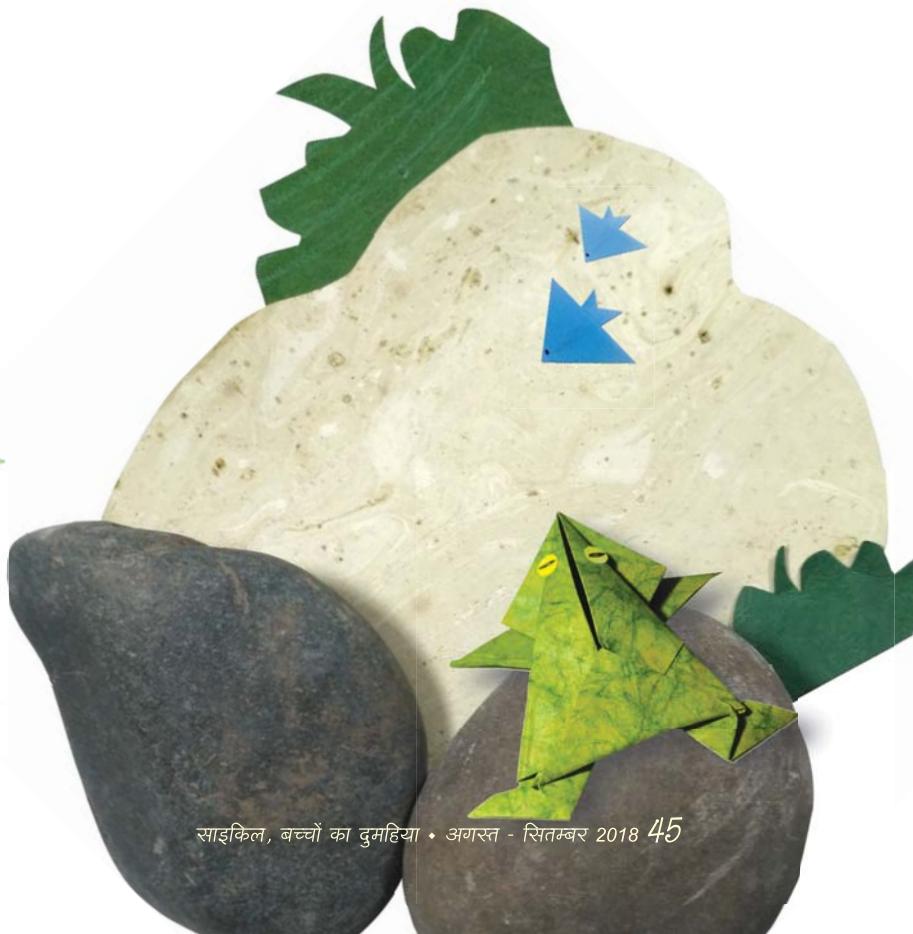


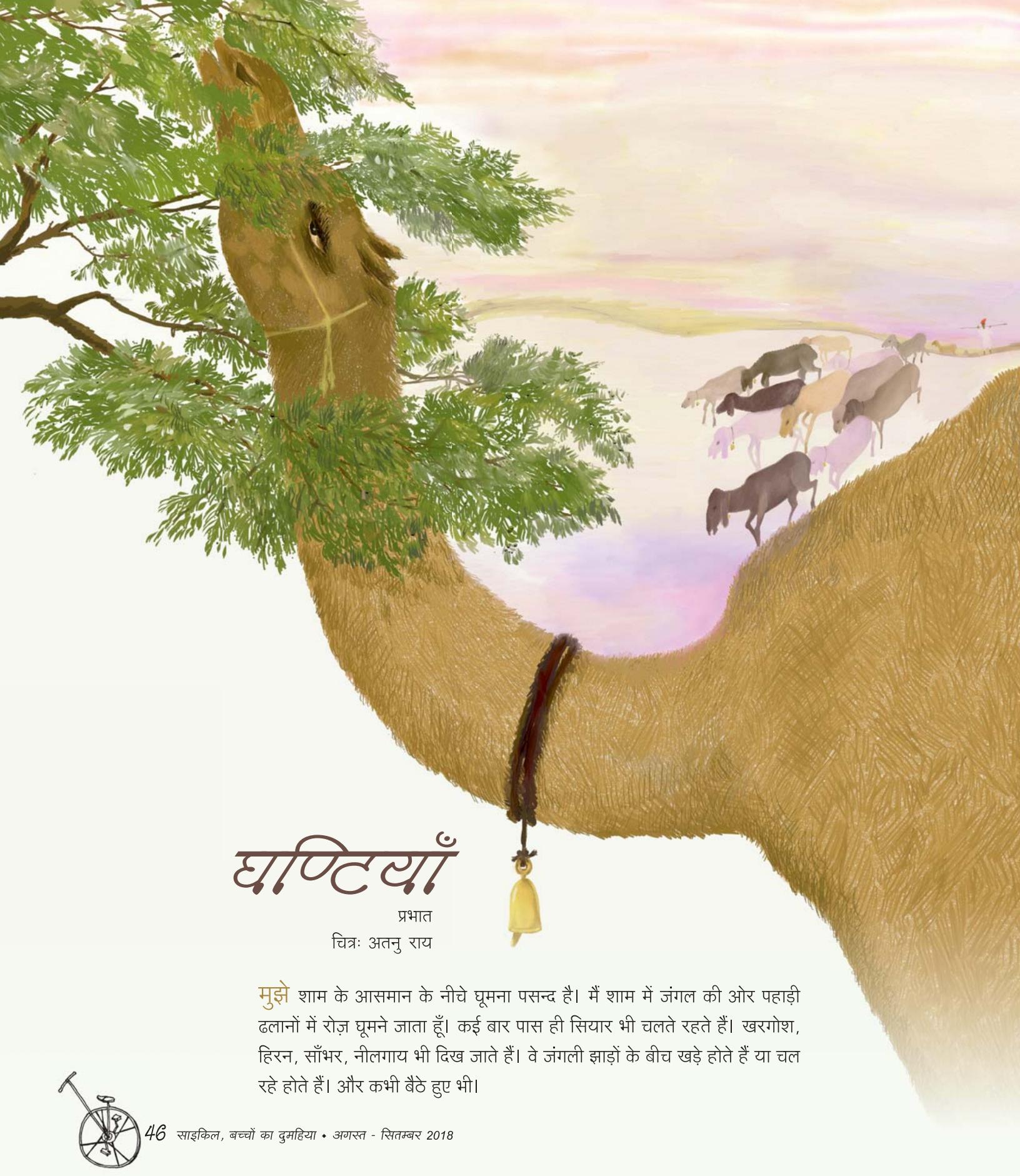
14



15

यहाँ पर उंगली से दबाओ और
छोड़ दो... मेंठक कूदा?





घण्टियाँ

प्रभात

चित्रः अतनु राय



मुझे शाम के आसमान के नीचे धूमना पसन्द है। मैं शाम में जंगल की ओर पहाड़ी ढलानों में रोज़ धूमने जाता हूँ। कई बार पास ही सियार भी चलते रहते हैं। खरगोश, हिरन, साँभर, नीलगाय भी दिख जाते हैं। वे जंगली झाड़ों के बीच खड़े होते हैं या चल रहे होते हैं। और कभी बैठे हुए भी।



एक दिन झाड़ियों और पेड़ों के पार से घण्टी की आवाज़ आ रही है। घण्टी की आवाज़ कभी धीरे कभी तेज़ सुनाई दे रही थी। बीच-बीच में आवाज़ आना बन्द हो जाती थी। मैं आवाज़ का पीछा करते हुए उधर गया। एक रेतीले नाले को पार किया। अब आवाज़ पास ही कहीं से आ रही थी। मैं आवाज़ को सुनता हुआ, बबूलों के बीच गया। वहाँ एक ऊँट बबूल की लूम खा रहा था। उसकी गर्दन में बँधी पीतल की घण्टी ढोल रही थी।

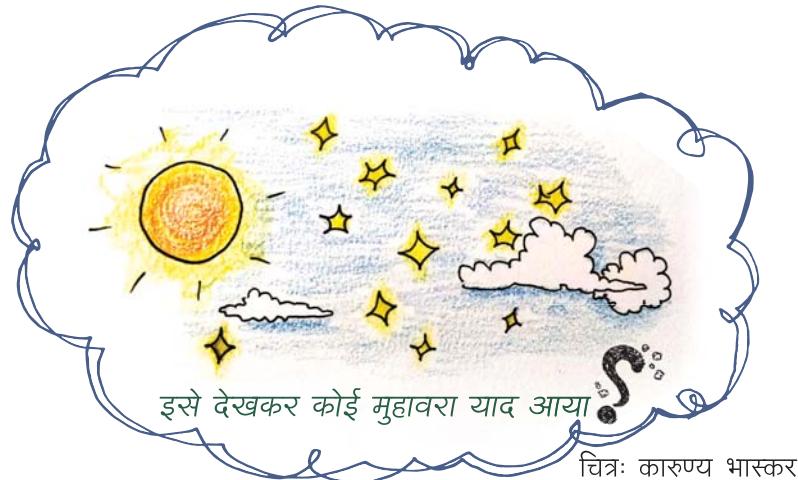
लेकिन तभी कई बड़ी-सी घण्टियों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। ठन ठन डन डन। भैंसों की एक कतार आ रही थी। उनके गले में बँधी मोटी घण्टियाँ बज रही थीं।

पालतू जानवर जंगल में चरते-चरते पेड़ों, घासों, झाड़ियों में गुम हो जाते हैं। चरवाहों के बार-बार आवाज़ देने पर भी नहीं आते। घण्टी न हो तो चरवाहों के लिए इन्हें जंगल में खोजना मुश्किल हो जाए।

एकाएक बहुत सारी घण्टियों की रुनझुन सुनाई देने लगती है। ये सैकड़ों भेड़ों और बकरियों के गले में बँधी सैकड़ों छोटी-छोटी घण्टियाँ थीं।

जैसे-जैसे शाम घिरती है, जंगली पेड़ों, झाड़ों और घासों में कीड़े-मकौड़ों और झिंगुरों की सीटियाँ तेज़-तेज़ सुनाई देने लगती हैं।

मेरे लिए ये अँधेरे की घण्टियाँ हैं। इन्हें सुनते हुए घर लौट जाता हूँ।



चित्र: कारुण्य भास्कर



असगर वजाहत

चित्र: तापोषी घोषाल



इंजन और कौई

चन्दन यादव
चित्र : सागर अरणकल्ले

बहुत साल हुए। तब मैं भी पटरियों पर ढौँडा करता था। अब तो स्टेशन के बाहर एक जगह पर खड़ा रहता हूँ। कितने सारे लोग रोज़ स्टेशन आते-जाते हैं। पर कम ही लोगों का ध्यान मेरी तरफ जाता है। कभी-कभार जब कोई मेरी फोटो खींचता है तो बहुत अच्छा लगता है।

जब मैं काम का था तो एक सवारी गाड़ी खींचता था। मैं आज के इंजन की तरह डीज़ल और बिजली से नहीं चलता था। चलने की ताकत मुझे भाष से मिलती थी। भाष बनाने के लिए मेरे टैंक में पानी भरा जाता था। पानी गरम करने के लिए रोज़ देर सारा कोयला लगता था। आज की रेलगाड़ियाँ तो बहुत तेज़ चलती हैं। इनके मुकाबले तो मुझे ‘सुस्त’ ही कहा जा सकता है। मैं रुकता भी हर स्टेशन पर था।

उन दिनों गाँव में रुकते ही पटरियों के आसपास रहनेवाले लोग आ जाते। वे घर से बर्तन लेकर आते और मेरे टैंक से पानी ले जाते। मेरे टैंक में तैयार गरम पानी होता था। इसलिए ठण्ड के दिनों में मेरी बड़ी कद्र होती। लोग नहाने का गरम पानी मेरे टैंक से ले जाते। कोयले के जो टुकड़े जलते-जलते छोटे होते जाते थे, उनको पटरियों पर गिरा दिया जाता था। गाँव के लोग इनको उठाकर घर ले जाते। वे इनसे अपनी सिगड़ी जलाते होंगे।

एकदम से रुकना मेरे बस में नहीं था।
इसलिए मुझसे टकराकर कभी कोई इंसान

या गाय-भैंस जान गँवा बैठते थे। इनमें से एक वाक्या मुझे आज भी याद है।

एक दिन मुझसे टकराकर कोई कौआ मर गया। दूसरे दिन जब उस गँव में पहुँचा तो बहुत से कौए काँव-काँव चिलाते लपके। उनमें से कइयों ने मुझे चोंच भी मारी। वे मेरे ऊपर मँडराते और चिलाते रहे। मैं जब चल पड़ा तो कौओं ने जहाँ तक उनके लिए सम्भव था, मेरा पीछा भी किया। इसके बाद ऐसा रोज़ होने लगा। दस-पन्द्रह दिन तक यही चलता रहा। मुझसे चोंच टकराकर खुद कौओं को ही चोट लगती होगी। पर वे लगे रहे।

अजीब है ना! मुझसे इंसान कटे। जानवर कटे। पर किसी ने भी ऐसा बरताव नहीं किया, जैसा कौओं ने किया।

आजकल कभी-कभार कोई कौआ आकर मुझ पर बैठता है। थोड़ी देर सुस्ताकर अपने रास्ते चला जाता है।

क्या मुझे किसी कौए को इस बारे में बताना चाहिए? 



दरवाजा बारिश में भीगा
फूल गया है
हम सभझे कि
कभी पेड़ था
भूल गया है।

नरेश सक्सेना
चित्र: तापोषी घोषाल





मुझे बढ़त आकर्षित करते हैं

विकास सोनी से शशि सबलोक
की बातचीत

1. कुछ अपने बारे में बताएँ...

मैं देशनोक का रहनेवाला हूँ। हमारे घर में कई पीढ़ियों से सुनारी का काम होता है। नौवीं के बाद मैंने स्कूल छोड़ दिया और गहने बनाने लगा। यह बड़ा बारीक काम होता है। आँख और दिमाग दोनों थक जाते हैं। तो मैं घूमने निकल जाता था। देशनोक के आसपास रेगिस्तान है। यहाँ भूरी रेत साल भर बिछी रहती है। पर बारिश होते ही सब हरा हो जाता है। घास के मैदान जैसे रातों-रात उग आते हैं। घास आती है तो घास में रहनेवाले भी आ जाते हैं। मुझे इन्हें देखना, इनकी फोटो खींचना अच्छा लगता है। साँप खासतौर पर मुझे आकर्षित करते हैं।

2. साँप पकड़ने का ख्याल कहाँ से आया?

यह 2016 मई की बात है। मैं देशनोक में था। मई साँपों के प्रजनन का समय होता है इसलिए वो बिलों से बाहर आते हैं। उन दिनों मेरे घर के आसपास कई साँप मार दिए गए। एक साँप को तो तेजाब से जला दिया। वो इतना दर्दनाक दृश्य था कि मैं भीतर तक दहल गया। मैंने उसी पल तय कर लिया कि मैं इन्हें यूँ मरने नहीं दूँगा। तब मैं 20 साल का था।

3. तो आपने साँप पकड़ने की ट्रेनिंग ली?

नहीं, ट्रेनिंग नहीं ली पर मैं ऐसे कई लोगों को जानता था जो साँपों का बचाव करते थे। खासतौर पर शरद

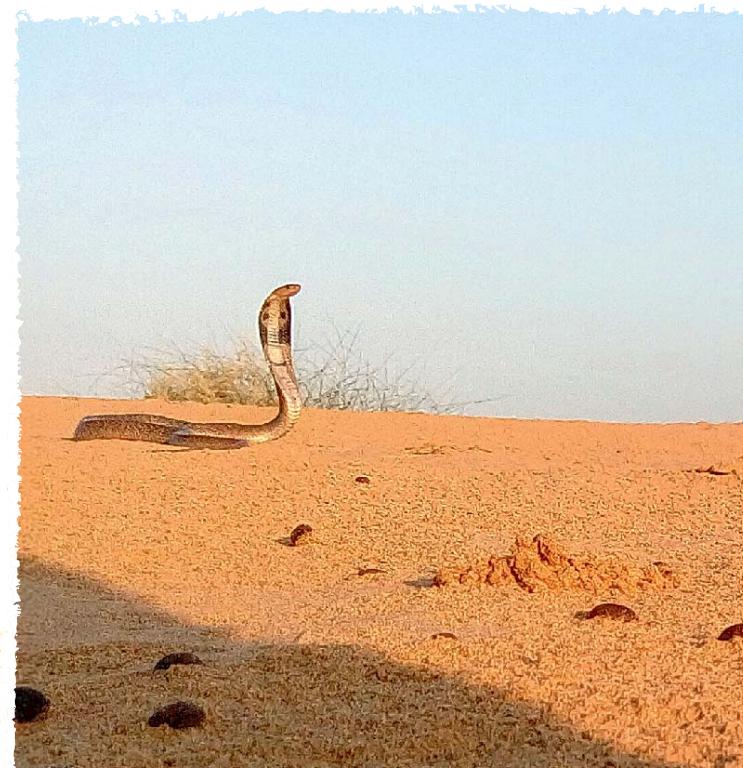
पुरोहितजी से मुझे बहुत मदद मिली। वो सालों से साँपों पर शोध कर रहे हैं और जोधपुर में साँपों को बचाने का काम करते हैं। मैंने तीन महीने ज़रूरी जानकारी इकट्ठा की और बस... शुरू कर दिया।

4. पहली बार साँप पकड़ते हुए आपको डर लगा?

जी बिलकुल! मैंने कभी किसी को साँप पकड़ते नहीं देखा था। और ऊपर से मेरा पहला साँप एक गुस्सैल कोबरा निकला।

5. इसके बारे में और बताइए...

19 जून को मेरे दोस्त का फोन आया कि उसकी दुकान के पास एक साँप निकला है। मैं झटपट अपने साज सामान के साथ वहाँ पहुँचा। मैं उत्सुक भी था और डरा हुआ भी। वो एक नाग था जो लोहे के सरियों के नीचे छिपा बैठा था। वो काफी गुस्से में लग रहा था। और ज़ोर-ज़ोर से फुँफकार रहा था। मैं उसके ज़्यादा नज़दीक जाने से बच रहा था। फिर मैंने अपने बैंग के आगे एक मोटा पाइप लगाया। लोगों



की मदद से सरियों को हटाया तो साँप तेज़ी से यहाँ से वहाँ भागने लगा। उसे काबू करना मुश्किल हो रहा था। हुक की मदद से मैं उसे बैंग में लगे पाइप के पास ले गया। साँप बहुत देर बाद अन्दर घुसा। वो काफी परेशान हो चुका था। वरना साँप काफी जल्दी बैंग में चले जाते हैं। फिर हमने उसे दूर वीराने में छोड़ दिया। उस दिन मैं बहुत खुश था।

6. साँप कैसे पकड़ते हैं?

साँप पकड़ने के लिए एक हुक चाहिए होता है और एक बैंग। बैंग मोटे कपड़े का होना चाहिए ताकि साँप अन्दर से आपको नुकसान नहीं पहुँचा पाए। बैंग के मुँह में एक फिट लम्बा पाइप बाँधा जाता है। साँप को इसके नज़दीक लाने पर वह इसे बिल समझकर भीतर चला जाता है। पर अगर साँप परेशान या गुस्से में हो तो काफी देर भी लग जाती है।



रेगस्तानी छिपकली सांडा अपने तीन बच्चों के साथ घास खाने के लिए निकली है।

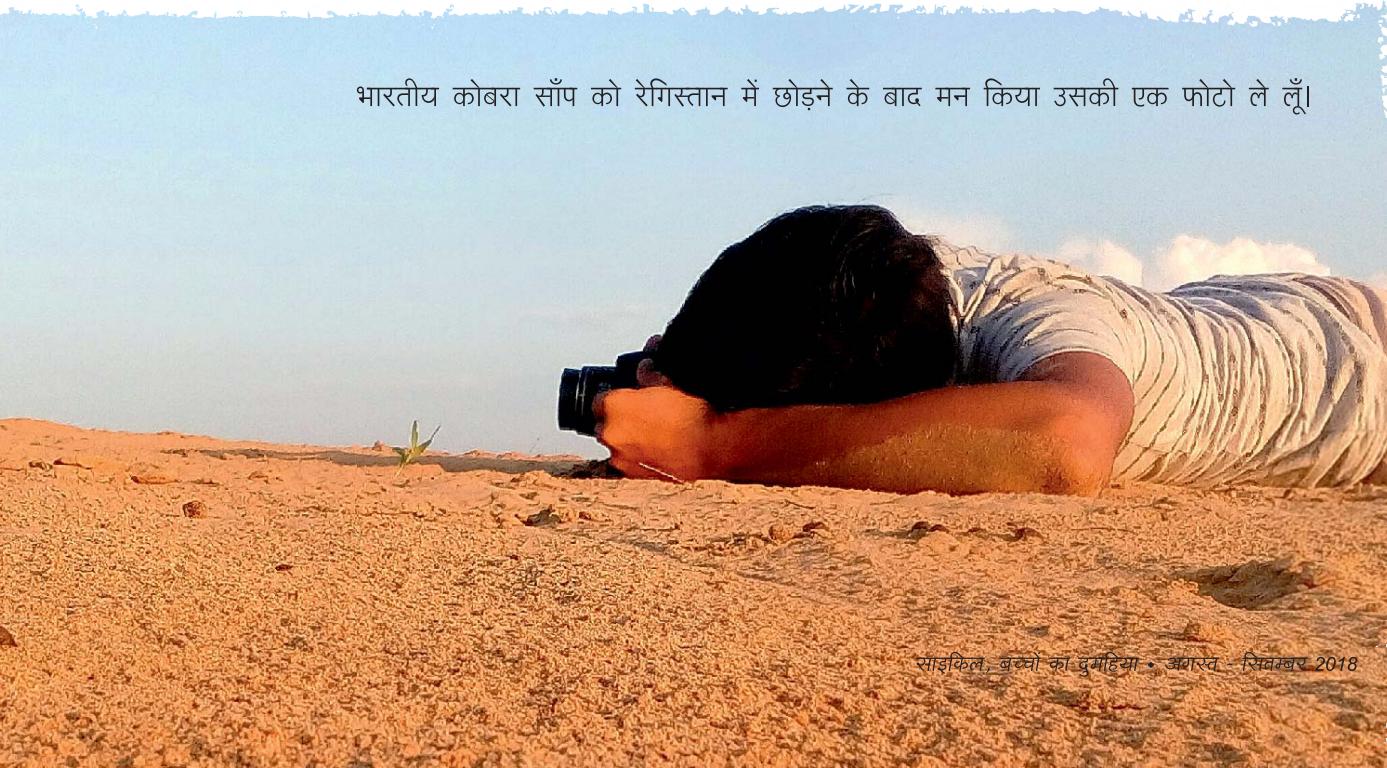
साँप के अन्दर जाने पर बैंग को बन्द कर देते हैं। बैंग के अन्दर अँधेरा होने से वो शान्त हो जाता है। फिर उसे दूर किसी मुफीद जगह पर छोड़ दिया जाता है।

7. साँप पकड़ते वक्त बरती जानेवाली सावधानियाँ?

साँप पकड़ते हुए खुद की सुरक्षा बहुत ज़रूरी है। साँप पर अचानक पैर आ जाए तो वो काट सकता है। ऐसे में बढ़िया स्पोर्ट्स शूज से बचाव हो सकता है।

अपने बचाव के साथ-साथ साँप की सुरक्षा का भी ख्याल रखना ज़रूरी है। उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत नाजुक

भारतीय कोबरा साँप को रेगिस्तान में छोड़ने के बाद मन किया उसकी एक फोटो ले लूँ।





साँप पकड़ने
का हुक

होती है। वह टूट जाए तो साँप मर जाता है। साँप को गलत तरीके से पकड़ने से उसे नुकसान होता है। और छोटी-सी गलती होने पर साँप काट भी सकता है।

साँप को गुस्सा दिलाने से भी बचना चाहिए। साँप को भगाने के लिए उस पर गर्म पानी या पेट्रोल डालने से साँप गुस्सैल हो जाता है और काट सकता है।

8. साँप पकड़ कर क्या करते हैं?

वैसे तो हम जहाँ रहते हैं वह भी साँपों की जगह है। पर फिर भी उनकी सुरक्षा का ख्याल कर हम उन्हें जंगल या रेगिस्तान में छोड़ आते हैं।

9. साँपों की आदतों के बारे में बताएँ?

साँप कोल्ड-ब्लडेड जीव है। यानी जैसा बाहर का तापमान वैसा ही उनके शरीर का तापमान होता है। इस्तीलए आमतौर पर वो गर्मियों में ठण्डी-नम जगहों में रहते हैं। और सर्दियों में अपने बिलों में आराम करते हैं। आती सर्दियों में उन्हें धूप तापते देखा जा सकता है। बारिशों में सबसे ज्यादा साँप निकलते हैं। तब एक दिन में 4-5 साँपों के बचाव के कॉल्स आ जाते हैं।

नम, शान्त जगह जहाँ उनको खाने पीने के लिए अण्डे, गिरिगिट, कीड़े आदि मिलते रहें, साँपों की पसन्दीदा जगह होती है। साँप अक्सर दूसरे साँपों को खा जाते हैं। एक कोबरा दूसरे कोबरा को खा जाता है। किंग कोबरा के अलावा बाकी सभी साँपों पर ज़हर का असर होता है।

साँप कोई ऐसा जीव नहीं कि हम पर हमला करने के

लिए घात लगाए बैठा रहे। हम अपने रस्ते चलते जाएँ बिना उसे परेशान किए तो उसकी हमें काटने में कोई दिलचस्पी नहीं। पर उस पर पैर पड़ जाए, या उसके अण्डों-बच्चों को हमसे खतरा हो तो दूसरी बात है।

10. क्या साँप को देखकर पता चल जाता है कि वो ज़हरीला है?

यह थोड़ा मुश्किल होता है। साँप के जानकार कहते हैं कि बाहर से इनमें कम अन्तर दिखते हैं। ज़हरीले साँपों में ज़हर के दाँत होते हैं। बिना ज़हर के साँपों में दाँत तो होते हैं पर ज़हरवाले नहीं। अधिकतर साँपों के बच्चों के जन्म से ही दाँत होते हैं। यह उनको शिकार करने में सहुलियत देते हैं। भारत में 270 तरह के साँप पाए जाते हैं। इनमें से 70 प्रतिशत से ज़्यादा में ज़हर नहीं होता। चार ज़हरीले साँप जो लगभग पूरे भारत में पाए जाते हैं - बॉटी (Saw-scaled viper), नाग (Indian cobra), चित्ती (Russell's viper) और करैत (Common krait)। अधिकतर मौत के ज़िम्मेदार ये ही होते हैं।

11. अब तक आप कितने साँप पकड़ चुके हैं?

करीब-करीब 250 साँप बचाए हैं। इनमें अधिकतर कोबरा और शाही साँप थे। मेरे साथ इस काम में अब धीरज भूरा भी जुड़ गए हैं।

12. एक साँप पकड़ने में कितना वक्त लगता है?

कभी 5 मिनट तो कभी 3-4 घण्टे भी लग सकते हैं। साँप अगर खुले में हो तो ज़्यादा वक्त नहीं लगता। पर अक्सर साँप लकड़ी, ईंट या उपलों के ढेर में या फिर घर के स्टोर में छिप जाते हैं। ऐसे में काफी समय और मेहनत लगती है।

13. साँप काट ले तो?

साँप काटे की जगह को एंटीसेटिक साबुन से साफ कर जल्द से जल्द अस्पताल जाएँ। शरीर को हिलाए-डुलाएँ नहीं। इससे ज़हर जल्दी फैलता है। अगर उसका ज़हर खून में आ गया है तो एंटी-वेनम दिया जाता है। इलाज जल्द से जल्द शुरू होना ज़रूरी है। और साँप ज़हरीला नहीं है तो कोई खास ट्रीटमेंट की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर डॉक्टर से सलाह तब भी ज़रूर लेनी चाहिए।

14. घर में साँप निकले तो क्या करना चाहिए?

मुझ जैसे लोग हर शहर में होते हैं। उन्हें बुलाएँ। और जब तक वो आएँ साँप पर निगाह रखें। हमारे इलाके में अब साँपों की कमी होने से ज़ंगली चूहों और घास खानेवाले छोटे जीवों की भरमार हो गई हैं। चूहों के बढ़ने से खेती में काफी नुकसान होता है। साँप किसानों के दोस्त होते हैं।

15. साँप बचाने के अलावा आप क्या करते हैं?

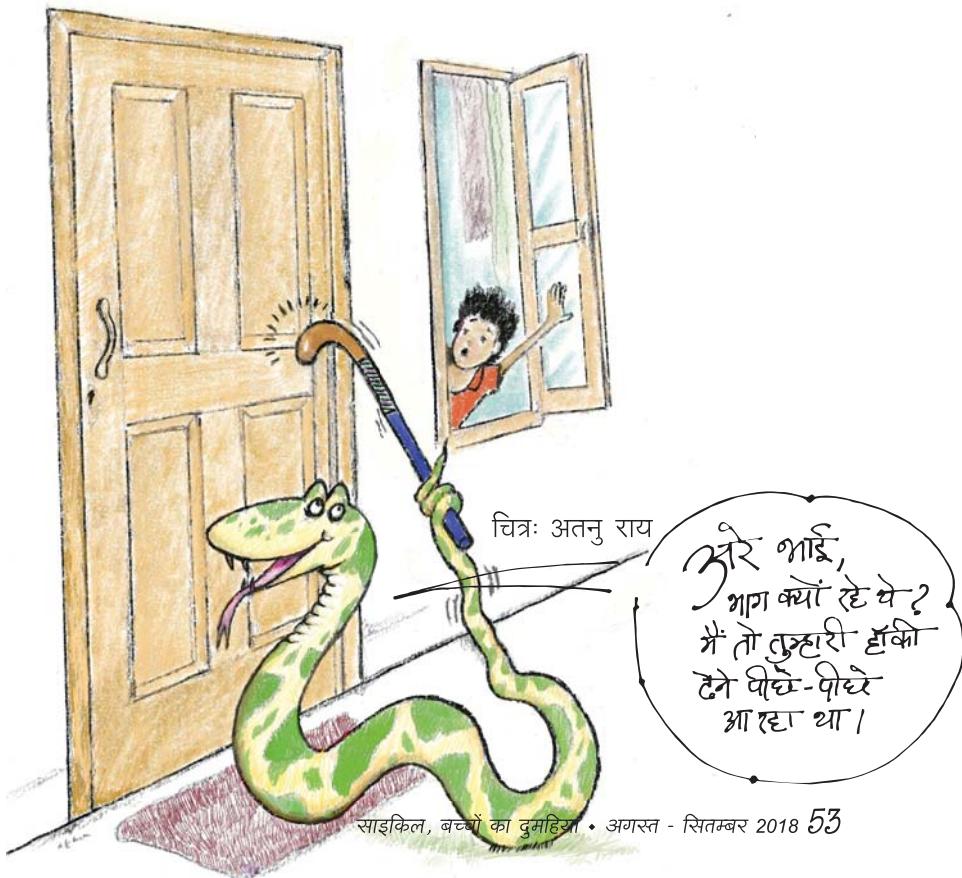
मैं थार रेगिस्ट्रान के जीवों पर शोध कर रहा हूँ ताकि उनका संरक्षण किया जा सके। हमने कुछ ऐसे जीवों को खोजा है जो पहले यहाँ नहीं देखे गए थे। यहाँ कई जीव हैं जो रेगिस्ट्रान के अलावा कहीं नहीं रहते हैं। जीवों को उनके प्राकृतिक रहवास में ही समझा जा सकता है। मेरी वन्यजीव फोटोग्राफी में भी दिलचस्पी है। मैं 17 साल की उम्र से यह कर रहा हूँ। इसके अलावा मैं सोने के गहने बनाने का अपना पारिवारिक काम भी करता हूँ।

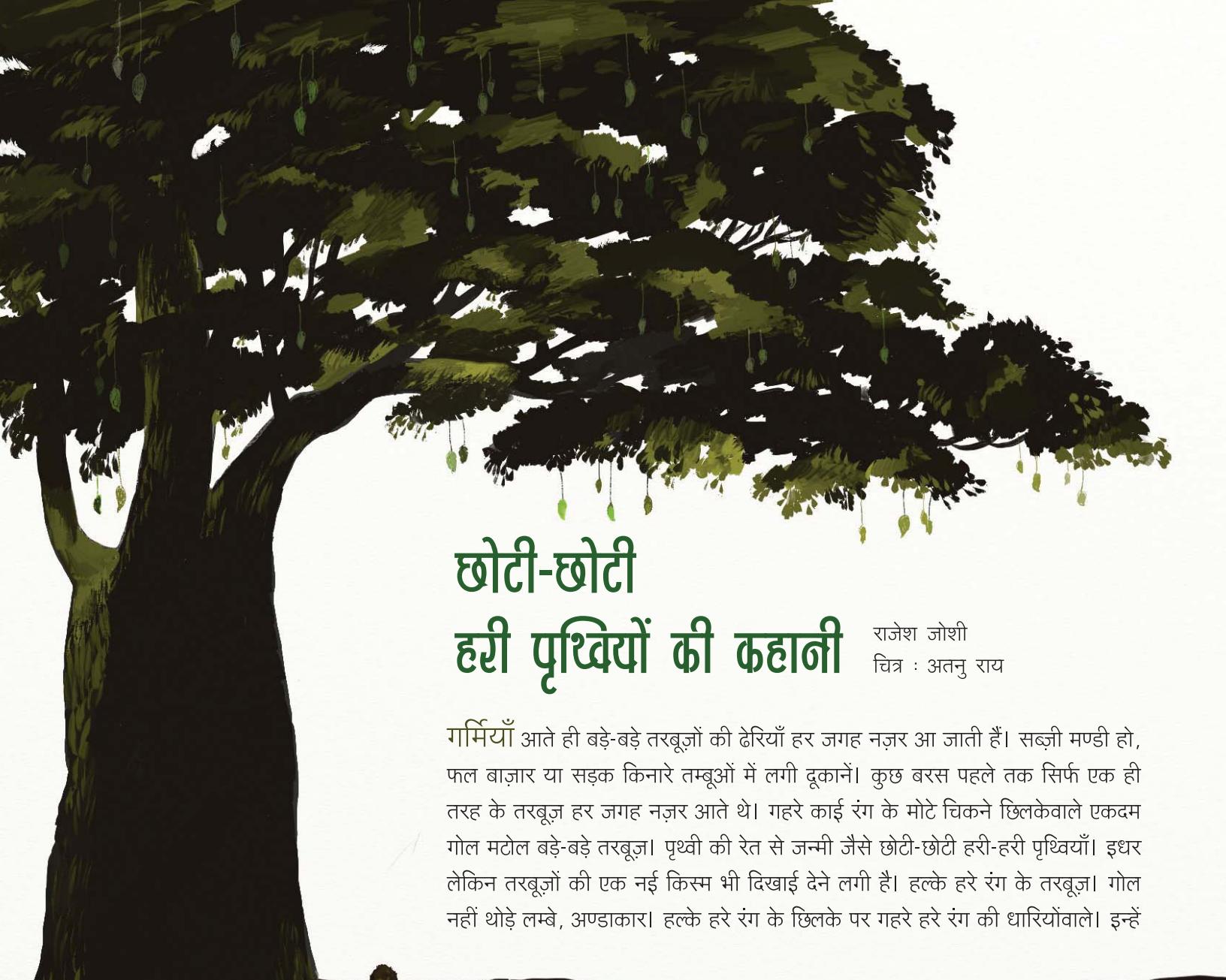
16. आपके घरवाले इस काम के बारे में क्या सोचते हैं?

जब मैंने साँप पकड़ना शुरू किया तो घर में किसी को नहीं बताया। मुझे पता था कि वो मानेंगे नहीं। जब पता चला तो उन्होंने काफी विरोध किया। उन्हें फिर कि कि यह खतरनाक भी हो सकता है। पर अब वो इसकी अहमियत जान गए हैं।

17. गहने बनाने के बारीक काम से क्या आपको साँप पकड़ने में फायदा मिला?

साँप पकड़ने में तो नहीं पर हाँ, फोटोग्राफी में इसका फायदा ज़रूर हुआ। जिस बारीकी से हम एक-एक मिलीमीटर पर गहनों पर काम करते हैं वैसे ही फोटोग्राफी में छोटे से छोटे हिस्से का ध्यान रखा जाता है।





छोटी-छोटी हरी पृथिवीं की कहानी

राजेश जोशी
चित्र : अतनु राय

गर्मियाँ आते ही बड़े-बड़े तरबूजों की ढेरियाँ हर जगह नज़र आ जाती हैं। सब्जी मण्डी हो, फल बाज़ार या सड़क किनारे तम्बूओं में लगी दूकानें। कुछ बरस पहले तक सिर्फ एक ही तरह के तरबूज हर जगह नज़र आते थे। गहरे कार्ब रंग के मोटे चिकने छिलकेवाले एकदम गोल मठोल बड़े-बड़े तरबूज। पृथकी की रेत से जन्मी जैसे छोटी-छोटी हरी-हरी पृथिवीयाँ। इधर लेकिन तरबूजों की एक नई किस्म भी दिखाई देने लगी है। हल्के हरे रंग के तरबूज। गोल नहीं थोड़े लम्बे, अण्डाकार। हल्के हरे रंग के छिलके पर गहरे हरे रंग की धारियोंवाले। इन्हें



ईरानी तरबूज कहा जाता है। हो सकता है इनका बीज ईरान से आया हो। ईरानी कहानियों पर साठ के आसपास या उससे कुछ पहले बनी ब्लैक एण्ड वाइट फिल्मों में इस तरह के तरबूज दिखाई देते थे। उन्हें देखकर इनके रंग की कल्पना करना मुश्किल था। पिछले तीन-चार दशकों में हमारे अनाज, फल और सब्जियों के बीजों में जो प्रयोग हुए हैं उन्होंने हमारे फलों और सब्जियों की शक्ति और स्वाद को बहुत बदल दिया है। ये नई किस्में देखने में ज़्यादा सुन्दर हैं। ज़्यादा टिकाऊ हैं लेकिन पुराना स्वाद जिनकी जुबान पर लगा हुआ है, उन्हें यह स्वाद नहीं भाता। लेकिन पुराने तरबूजों के बीच अब ये हल्के हरे रंग के तरबूज अपनी जगह बना चुके हैं। इनकी त्वचा पर गहरे हरे रंग की धारियाँ हैं। गिलहरी की पीठ पर बनी धारियों जैसी धारियाँ।

तरबूज देखकर मुझे अकसर लगता है कि वह एक संयुक्त परिवार का एक कुटुम्ब का फल है। वह हमेशा ही इतना बड़ा होता है कि छोटे-से एकल परिवार द्वारा उसका उपयोग करना सम्भव ही नहीं हो पाता। छोटे परिवारों में यह वाक्य आपको कभी भी सुनने को मिल जाएगा कि इतना बड़ा फल खरीदकर क्या करें? खानेवाले तो हम दो या तीन लोग हैं। फ्रिज में भी इतनी जगह कहाँ कि इतना बड़ा फल रखा जा सके। बचपन में निहाल में जब हम और हमारे मौसेरे भाई-बहन इकट्ठे होते तो फल के बड़े होने या संख्या में ज़्यादा होने जैसी बात कोई सोचता भी नहीं था। दो-तीन तरबूज एक ही बार में काटे जाते और थोड़ी-सी देर में साफ हो जाते। उन दिनों कलमी आम का चलन नहीं था। गाँव में आम बेचनेवाले डलों में भरकर चुसनी आम लाते और डलिया के हिसाब से ही आम खरीद लिया जाता। सारे आम धोकर एक बालटी में पानी में रख दिए जाते। हम सारे बच्चे उसके आसपास इकट्ठे होकर उन्हें खाते। तब ना फलों के बच जाने की चिन्ता थी न उसे अबेर कर रखने की। जब परिवार छोटे होने लगे तो हमारे शहर में ऐसे ठेले दिखना शुरू हुए जिन पर तरबूज काटकर बरफ की सिलियों पर ठण्डा

करके और चाट मसाला डालकर प्लेटों में बेचा जाने लगा। तरबूज का कटकर प्लेटों में बिकना, चुसनी आम की जगह कलमी आम का प्रचलन, अमरस की जगह मैंगो शेक का बनना। इन सब घटनाओं की आड़ में हमारी सामाजिक संरचना और परिवार में आए बदलावों के कितने प्रसंग छिपे होंगे।

इटारसी-होशंगाबाद वाले इलाके का तरबूज बहुत मीठा होता है। मण्डियों तक आते-आते थोड़ा भाव चढ़ जाता है। लेकिन सड़क के रास्ते आओ तो खेतों के पास कई जगह किसान दस-पाँच तरबूज रखे मिल जाते हैं। यहाँ भाव-ताव करके काफी सर्ते में तरबूज मिल जाता है। किसान को घर लौटने की जल्दी भी होती है और बाज़ार तक जाने के साधन भी नहीं होते। यात्री इस बात को जानता है इसलिए कम से कम में बड़े से बड़ा तरबूज खसौट लेने की कोशिश करता है। हिन्दी के मशहूर व्यंग्यकार परसाईंजी का गर्दिश के दिन का एक मार्मिक प्रसंग भी तरबूज से जुड़ा है। किसी प्लेटफॉर्म का किस्सा है। जेब में पैसे नहीं थे और भूख भी लग रही थी। तभी बगल में बैठे एक किसान ने तरबूज काटा और एक फाँक परसाईंजी को दी। परसाईंजी ने लिखा है कि उन्होंने कम से कम छिलका छोड़कर उसे ज़्यादा से ज़्यादा खाने की कोशिश की। तरबूज ही शायद ऐसा अकेला फल है जो भूख भी मिटा देता है और प्यास भी।



फीकी चाय ...



प्रधानमंत्री की छींक

विष्णु नागर
चित्र : अतनु राय

कोई प्रधानमंत्री है तो क्या, उसे छींक नहीं आ सकती? ज़रूर आ सकती है। यह छींक के स्वभाव में है ही नहीं कि वह देश, धर्म, जाति, ऊँच-नीच, रंग, धन, पद में कोई भेदभाव करे। तो प्रधानमंत्री भी छींकने लगे। उन्हें इतनी छींकें आईं, इतनी आईं कि छींकते ही चले गए। प्रधानमंत्री के कक्ष में उनके सचिव आए हुए थे। थोड़ी देर तो वे लाचार देखते रहे। कुछ सूझा नहीं उन्हें। फिर वे भी दनादन छींकने लगे।

प्रधानमंत्री ने छींकते-छींकते ही इशारे में पूछा, आप क्यों छींक रहे हैं? वह प्रधानमंत्री के सचिव थे मगर प्रधानमंत्री से झूठ नहीं बोल सकते थे। उन्होंने कहा, “सर, आप छींक रहे हैं, इसलिए मैं भी आपके समर्थन में छींक रहा हूँ। आप ही मेरे ईश्वर, मेरे भाग्यविधाता, यहाँ तक कि अब मेरे मातापिता भी आप ही हो।” प्रधानमंत्री ने कहा, “तब ठीक है। खूब छींको और जब तक मैं छींकता रहूँ, तुम भी छींकते रहो। मगर इतनी ज़ोर-से मत छींकना कि मेरी छींक पर तुम्हारी छींक हावी हो जाए। प्रोटोकॉल का ध्यान रखना वरना डिसिलिनरी एक्शन ले लूँगा।” “यस सर,” सचिव ने कहा और दोनों ने फिर से छींकना शुरू कर दिया।

कभी सचिवजी जोश में आकर प्रधानमंत्री से भी अधिक ज़ोर-से छींकने लगते। तो प्रधानमंत्री आँखें दिखाकर उन्हें लाइन पर ले आते।

इन दोनों को छींकते देख, तमाम सचिव भी “आक छीं, आक छीं” करने लगे। प्रधानमंत्री के चेहरे पर इससे प्रशंसा का भाव आते देख, वे सभी और उत्साह में आ गए। भूल गए कि उन्हें छींकते हुए अपनी हैसियत का बराबर ख्याल रखना है। खैर, उन्हें होश में लाया गया तो सब अपने

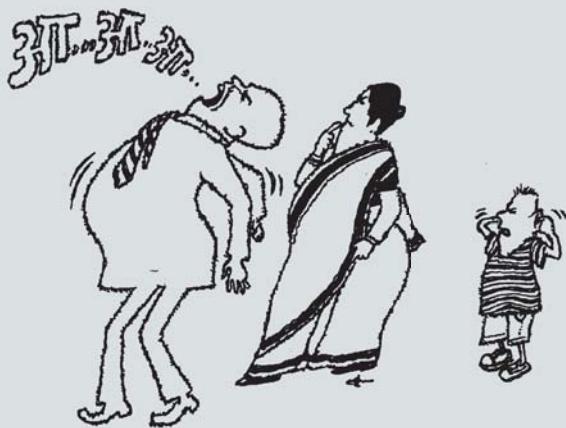
ओहदे के अनुसार छींकने लगे।

प्रधानमंत्री तो प्रधानमंत्री थे। करोड़ों जनता के प्रतिनिधि। उनके छींकने के जोश, उत्साह और तैयारी के आगे अधिकारियों के होश फाख्ता होने लगे। किसी को सू-सू आने लगी, किसी की आँख से, किसी की नाक से पानी आने लगा। किसी का मोबाइल बज रहा था मगर मन मारकर, शरीर को काबू में रखकर छींकते रहे। बीच-बीच में प्रधानमंत्री हाथ के इशारों से उनका उत्साहवर्धन करते जा रहे थे।



इस बीच प्रधानमंत्री के सेवक इन छींकते हुए पदाधिकारियों के लिए चाय-नाश्ता लेकर आए। यह दृश्य देख उन्हें भी छींकने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस चक्कर में एक के हाथ से नाश्ते की, दूसरे के हाथ से चाय की सभी प्लेटें टूट गईं। प्रधानमंत्री ने संकेत में कहा कि चिन्ता मत करो। सरकारी माल है और आ जाएगा। और फिर इनका चाय-नाश्ता करना भी ज़रूरी नहीं। तुम तो छींको और छींकते जाओ। मेरे स्टाफ हो, मेरा साथ निभाओ। मेरे हो, यह दुनिया को दिखाओ।

धीरे-धीरे प्रधानमंत्री निवास के पक्षियों को छोड़ सभी मनुष्य छींकने लगे। जिन्हें मनुष्य नहीं माना जाता था, वे भी शामिल हो गए। सुरक्षाकर्मी, सुरक्षा छोड़ ‘आक-छीं आक-



छीं’ करने लगे। यह खबर मंत्रियों-अफसरों तक पहुँची तो जो जहाँ भी थे, दिल्ली में या लंदन-न्यूयॉर्क में, भागलपुर में या पोरबन्दर में, वे सभी अटेंशन की मुद्रा धारण करके छींकने लगे। पार्टी के सांसद, विधायक आदि-इत्यादि जो भी थे, छींकने लगे। कुछ छींकने लगे, कुछ छींकने का फोटो और वीडियो बनवाकर प्रधानमंत्री निवास पहुँचवाने लगे।

टीवी चैनलों के एंकर छींकने लगे। छींक-छींककर एंकरिंग करने लगे। यह ऐतिहासिक क्षण था। टीवी पर देश के छींक-विशेषज्ञ बुलाए गए। उनसे पूछा गया कि प्रधानमंत्री जैसे ज़िम्मेदार पद पर बैठे व्यक्ति को इतनी छींक आखिर क्यों और कैसे आ सकती है? इसका ज़िम्मेदार कौन है? उसे या उन्हें अभी तक नौकरी से निकाला क्यों नहीं गया? कब तक निकाला जाएगा? क्या सचमुच इस देश में मेडिकल साइंस का हाल इतना बुरा है? इतना बुरा है कि वह प्रधानमंत्री की छींक को तुरन्त रोक नहीं सकती? इतने सारे विशेषज्ञ रोज़ उनकी जाँच करते हैं तो करते क्या हैं वे? वे अगर प्रधानमंत्री को छींक की पूर्व चेतावनी तक नहीं दे सकते तो उन्हें चुल्लू भर पानी में झूब मरना

चाहिए। प्रधानमंत्री से अधिक महत्वपूर्ण कुछ नहीं हो सकता। प्रधानमंत्री हैं तो देश है वरना देश के होने का क्या मतलब है।



सारा संसार हम पर थू थू कर रहा है कि हम अपने प्रधानमंत्री को भी छींक के खतरे से बचा नहीं पा रहे हैं? कहीं प्रधानमंत्री की इस छींक के पीछे कोई विदेशी या विपक्षी षड्यंत्र तो नहीं है? क्या कर रही हैं हमारी इतनी सारी गुप्तचर एजेंसियाँ?

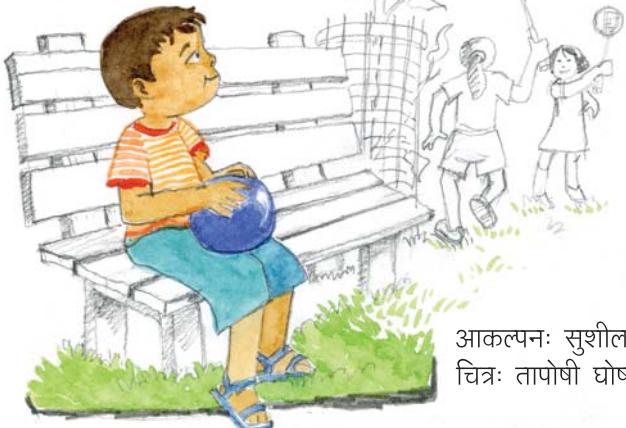
विदेशों से सन्देश आने लगे थे कि प्रधानमंत्री ठीक तो हैं! भारत संकट में तो नहीं है वरना हम अपनी फौजें भेजें। इस स्थिति में लोग भ्रमित हो गए कि क्या उन्हें भी छींकना चाहिए। उनमें से कुछ छींकने लगे। रोज़ खाने-कमानेवाले अपने-अपने कामों में लगे रहे। कई इनमें से पीटे गए कि देश संकट में है। देश की आत्मा कराह रही है। हमारे प्रिय प्रधानमंत्री छींक-छींक कर हैरान हैं। सारा देश उनके लिए छींक रहा है और तुम्हें आज भी गददारो, रोटी की चिन्ता सता रही है?

उधर बच्चों को छींकने के खेल में बहुत मज़ा आने लगा था। उन्हें पता ही नहीं था कि वे क्यों, किसके लिए छींक रहे हैं, मगर छींक रहे थे। खेल-खेल में उन्होंने छींकने का प्रधानमंत्री का रिकॉर्ड भी तोड़ डाला।

उसी रात को नौ बजे प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित किया। इसमें उन्होंने देश के हर नागरिक को धन्यवाद दिया कि उसने उनके ऊपर इतना प्रेम, इतना स्नेह बरसाया है, उनके नेतृत्व में इतना भरोसा जताया है।



चॉकलेट

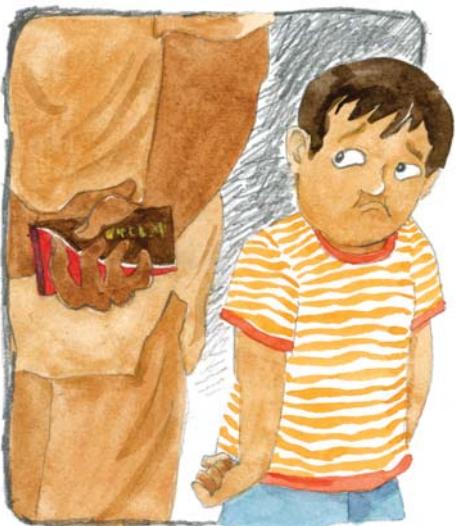


आकल्पन: सुशील शुक्ल
चित्र: तापोषी घोषाल

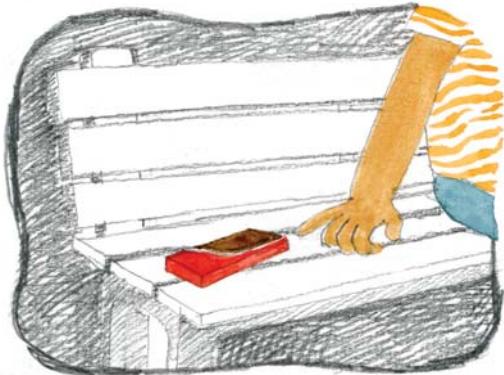


नहीं मतलब नहीं...

तुम्हारे शरीर के बाँस तुम हो।
कोई उसे किसी तरह से नुकसान
पहुँचा नहीं सकता है।



तुम्हारे



शरीर के वे अंग

तुम्हारे शरीर के वे अंग जो चड़ीया या बनियान से ढूँके रहते हैं तुम्हारे अन्दरूनी अंग हैं। कोई उन्हें छूता है, देखने की कोशिश करता है या उनके बारे में तुमसे ज़बर्दस्ती करता है तो यह ठीक नहीं है। हाँ, तबियत खराब होने पर तुम्हारे माता-पिता या डॉक्टर उन्हें देख सकते हैं।



गले लगाना

जो लोग तुम्हें अच्छे लगते हैं उनका गले
लगाना या चुम्मी लेना-देना तो ठीक है।
पर हाँ, अगर कोई तुमसे कहे कि यह
बात किसी से मत कहना, यह हमारी-
तुम्हारी सीक्रेट है तो तुम ज़रूर इसे ऐसे
किसी व्यक्ति को बताना जिन पर तुम्हें
यकीन हो।

गिफ्ट

हो सकता है कोई कुछ ऐसा करने को कहे जो तुम्हें अच्छा न लगता हो। कोई ऐसा काम जो तुम्हें अजीब लगता हो या उसे करने में तुम असुरक्षित महसूस करते हो। इसके बदले में कोई तुम्हें मिठाई,
चॉकलेट या पैसा या कोई और गिफ्ट देकर बहलाने-फुसलाने की
कोशिश कर सकता है। वे जो कहें उसे करने से और गिफ्ट लेने से
तुम एकदम मना कर दो।



स्पीक्रेट

अगर कोई तुम्हें कहीं छूता है और
कहता है कि इसे किसी को मत
बताना। तो यह बात ऐसे किसी
व्यक्ति को ज़रूर बताना जिस
पर तुम्हें यकीन हो।

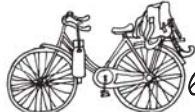


नहीं

अगर कोई तुम्हें तुम्हारी मर्जी के खिलाफ छूने की
कोशिश करता है तो उसे कड़ाई से मना
करो...नहीं...

चिल्लाओ और भाग जाओ...

कोई तुम्हें परेशान करता है,
ज़बर्दस्ती छूता है जो तुम्हें
अच्छा नहीं लगता तो
चिल्लाओ और भाग जाओ।
किसी ऐसे व्यक्ति को यह
बात ज़रूर बताओ जिस पर
तुम्हें भरोसा हो। छिपाना
नहीं। इसमें तुम्हारा कोई
कसूर नहीं है। तुम इसके
लिए जिम्मेदार नहीं हो।



चोर और पहलवान

असगर वजाहत
चित्र: देबब्रत घोष

लखनऊ में अमीनाबाद के पास हम लोगों का एक दो मंज़िला बड़ा घर था। उसमें बहुत से लोग रहा करते थे। हमारे एक चर्चेरे भाई को पहलवानी का शौक था। वे सुबह-सुबह सूरज निकलने से पहले मकान की छत पर मुगदर चलाने चले जाते थे। वे एक घण्टे वर्जिश करते थे। काफी लम्बे-चौड़े और ताकतवर थे। कई कुशियाँ जीत चुके थे।

एक दिन सुबह-सुबह जब वे छत पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ सूखे नारियल से दो आदमी बेखबर सो रहे हैं। उन्होंने दोनों की गर्दन पकड़ कर खड़ा कर दिया। वे दोनों बहुत डर गए।

भाई ने उनसे पूछा, “तुम लोग कौन हो?”

उन्होंने डरते-डरते कहा, “हम चोर हैं।”

भाई ने पूछा, “फिर चोरी क्यों नहीं की?”

उन्होंने कहा कि हम जब छत पर चढ़े तो देखा कि आँगन में लोग जाग रहे हैं। हमने सोचा कि जब सब सो जाएँगे तब हम नीचे उतरेंगे। हम छत पर लेट गए। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। हमें नींद आ गई।

भाई ने पूछा, “तुम लोग क्या करते हो?”

उन्होंने कहा, “हम लोग दिहाड़ी मज़दूर हैं। कई दिन से दिहाड़ी नहीं लगी थी। खाना भी नहीं खा पाए थे तो चोरी करने आए थे।”

भाई उन दोनों को नीचे आँगन में ले आए। वहाँ हम सब भाई-बहन, चाचा-मामा मौजूद थे। हम लोगों ने चोरों को देखा।

अम्मा ने पूरी बात सुनकर उन्हें भरपेट खाना खिलाया। और उन्हें पाँच-पाँच रुपए भी दिए। और कहा आइन्दा चोरी मत करना!





फिल्म समीक्षा



बायस्कोपवाला

कृष्ण कुमार

“काबुलीवाला” कहानी रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1892 में लिखी थी। उस पर बांग्ला में 1957 में और हिन्दी में 1967 में फिल्म बनी। ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे उजड़े चमन... इसी फिल्म का एक प्रसिद्ध गीत है जो आज तक लोकप्रिय बना हुआ है। अब इसी कहानी पर एक नई फिल्म आई है जो टैगोर की मूल रचना को समय की दृष्टि से आगे खिसकाकर आज के सन्दर्भ में खींच लाती है। इस नई फिल्म का नाम है “बायस्कोपवाला।” इसके निर्देशक हैं - देब मेथेकर। इस फिल्म में एक ही गाना है जो गुलज़ार ने लिखा है। संदीप शांडिल्य का संगीत इस गीत को इतना सुन्दर बना देता है कि फिल्म में इस गाने की धून बार-बार सुनकर भी जी नहीं अघाता।



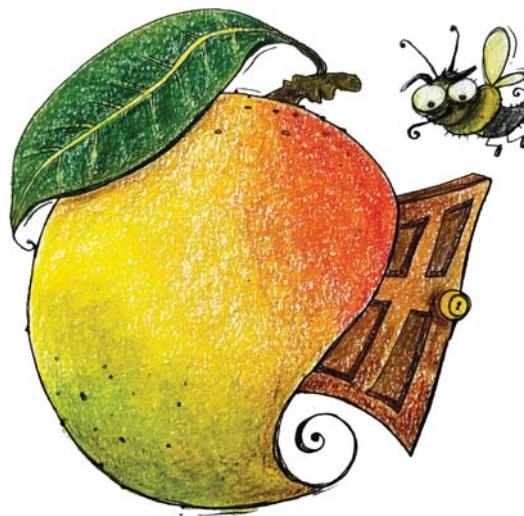
जैसा कि इस फिल्म के शीर्षक से पता चल जाता है, टैगोर का काबुलीवाला इसमें बायस्कोपवाला बन जाता है। टैगोर का काबुलीवाला मेरे बेचता था, इस फिल्म में वह बायस्कोप दिखाकर बच्चों का मनोरंजन करता है। बायस्कोप एक पुरानी मशीन है जो आज भी किसी मेले में दिख जाती है। जब ठीवी नहीं था, तब बायस्कोप के छेद में झाँककर अजीब-अजीब तस्वीरें देखने में काफी मज़ा आता था।

काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। टैगोर का काबुलीवाला अफगानिस्तान से आया था और कलकत्ते की गलियों में घूमता था। बायस्कोपवाला भी अफगानिस्तान से कलकत्ता आया है। पर आज का अफगानिस्तान गृहयुद्ध



और आतंकवाद से जूझता हुआ देश है। बायस्कोप दिखाकर गुज़ारा करनेवाला रहमत खान अपनी जिस बिट्या को गाँव में छोड़कर कलकत्ता आया है, उसके भाग्य की कल्पना करना भी हमारे लिए कठिन है। टैगोर की मूल कहानी की तरह इस फ़िल्म में भी एक छोटी-सी मिनी है जो बायस्कोपवाले की दोस्त बन जाती है। बड़ी होकर उसे अपने पिता के द्वारा छोड़ी गई एक बड़ी ज़िम्मेदारी निभाने के लिए काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। ये मुश्किलों फ़िल्म को काफी रोमांचक बना देती हैं।

मिनी की भूमिका इस फ़िल्म में गीतांजली थापा ने बहुत अच्छी तरह निभाई है। लम्बी जेल की सज़ा भुगतकर निकले रहमत खान की मदद वह करे या न करे, यह दुविधा, और मदद करे तो किस तरह करे, यह सवाल सिनेमा देख रहे हर दर्शक को महसूस होता है। रहमत खान की भूमिका डैनी डेनजॉंगपा ने निभाई है। यह भी काफी कठिन भूमिका है और ठीक-ठाक बन पड़ी है। फ़िल्म समाप्त होने पर हॉल से निकलते वक्त समझ में नहीं आता कि टैगोर की अमर कहानी का यह इक्कीसवें सदी वाला रूप किस तरह स्वीकार करें। टैगोर की रचना बड़ी कोमल थी, नए रूप में वह काफी कठिन बन पड़ी है, फिर भी विश्वसनीय लगती है।



बिना काम के

भीतर गई,
आम के गुठली
कैसे बिना
काम के गुठली?

प्रभुदयाल श्रीवास्तव
चित्र : कारुण्य भास्कर

A E F H I K L M N T V W X Y Z
B C D G J O P Q R S U

इन अक्षरों को
किस आधार पर
अलग किया होगा?

$$\frac{X \times |||}{V //} = //$$

इस समीकरण को सही करने के लिए कहीं से भी एक | को उठाकर कहीं लगाना है। तो बताओ कौन उठेगा और कहाँ जाएगा?

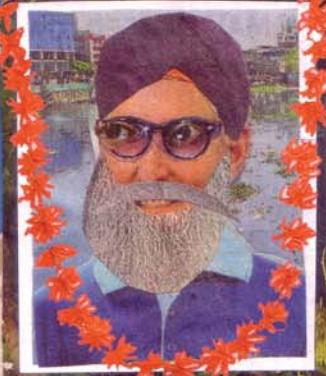


साइकिल और पेड़

सुशील शुक्ल

चित्र : दीपा बलसावर





दूधवाला आया। साइकिल उसने पेड़ से टिका दी। दूध के डिब्बे को उठाए वह दूध देने चला गया।

साइकिल और साइकिल की परछाई दोनों को चैन आया। वे दोनों सुबह से ही दौड़ रही थीं। पेड़ की परछाई वहाँ पहले से पड़ी थी। साइकिल की परछाई उसी के ऊपर सिर रखकर सो गई।

पेड़ की परछाई पेड़ से बँधी रहती थी। यूँ तो हरेक चीज़ की परछाई उस चीज़ से बँधी रहती थी। मगर साइकिल की परछाई दुनिया भर में घूमती फिरा करती। पेड़ की परछाई साल भर बदलती रहती। जब पेड़ पर फूल आते तो पेड़ की परछाई को भी फूल आते। जब पेड़ को फल आते तो पेड़ की

परछाई को भी फल आते। पतझड़ में पेड़ के पत्ते झरते तो उनके साथ उन पत्तों की परछाई भी झर जाती।

एक दिन दूधवाला अपनी गाय चराने लगा। ऐसा गया कि फिर नहीं लौटा। कुछ चरवाहे उसकी लाश उसके घर छोड़ गए। उसकी परछाई थोड़ी देर उसके पास लेटी रही। उसे कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया। उसके घर में उसकी एक तसवीर लगी है। इसी तसवीर के पीछे उसकी एक छोटी-सी परछाई रहती है। उस आदमी को छिपकलियों से बहुत डर लगता था। पर आजकल उसकी फोटो के पीछे दो छिपकलियाँ दुबकी रहती हैं। और उस आदमी की परछाई साँस रोके पड़ी रहती है।



पधारो म्हारे देस

पियूष सक्सेरिया

यह घोंसला भी स्वॉलो का है। यह कप के आकार का नहीं है। पूरा ढँका है। शायद पानी से बचाने के लिए इसने अपने घोंसले पर पंख भी चिपका दिए हैं। इतने सारे पंख ये कहाँ से लाई होगी!

मैं उन दिनों नेपाल के गाँवों में घूम रहा था। 2015 की बात है। नेपाल में कुछ ही दिन पहले भयानक भूकम्प आया था। मैं भूकम्प से मकानों को हुए नुकसान को समझने की कोशिश में था। एक सड़क के किनारे मकान निर्माण में इस्तेमाल होनेवाले सामान की दुकान थी। मैं वहाँ गया। इतने में एक चिड़िया तेज़ी-से उड़ती हुई आई। वो बरामदे की दीवार से टकराने ही वाली थी कि एकदम से धीमी हुई और दीवार से चिपके मिट्टी के घर में बैठ गई। वो मिट्टी के कप के आकार का घोंसला था। चारों तरफ भूकम्प की तबाही मची थी। अपने दूटे मकानों की मरम्मत का सामान लेने लोग लगातार आ-जा रहे थे। पर वो चिड़िया इस सब से बेखबर अपने अण्डे सेने में लगी थी।

यह चिड़िया है - बान्न स्वालो। यह ज़मीन पर कम ही दिखती है। जब देखो आसमान में कलाबाज़ियाँ लगाती दिखेगी। इन्तहा तो यह है कि यह खुली चोंच से पानी की सतह को छूती हुई सर्र से निकल जाती है। और इसी उड़ान में कुछेक घूँट पी लेती है। नीचे उत्तरती ही नहीं तो ज़ाहिर है खाना भी उड़ते कीट-पतंगों का ही होता है। पर गर्मी आते ही नज़ारा बदल जाता है। इन दिनों ये कीचड़ के आसपास खूब दिखती हैं। पानी पीने नहीं, गीली मिट्टी को चुगने। गीली मिट्टी को अपनी चोंच में फँसाकर ये किसी दीवार से चिपकाती जाती हैं। इस तरह इसका छोटा-सा घोंसला बनता जाता है।

पर जाने क्यों ये बरामदों को ही अपना घर बनाने के लिए चुनती हैं। स्कूल, घरों या दुकानों में भी इनके घोंसले दिख जाते हैं। गौरैया की तरह बान्न स्वालो ने भी इंसानों के साथ रहने की आदत बना ली है। माना जाता है कि अगर स्वालो आपके घर में घोंसला बना ले तो समझो आपकी किस्मत चमकनेवाली है।

एक बार मैं एक छोटे-से गाँव देवलसरी से मसूरी लौट रहा था। साथ में मेरा एक दोस्त भी था। हम एक जगह रुके। वहाँ कमाल की चाय बनती थी। पर चाय-पकौड़े से पहले हम बिजली के सामानवाली एक दुकान में गए। दुकान बहुत छोटी थी। दुकान में घुसते ही हमने देखा कि एक स्वॉलो पूरी रफ्तार में आई और बिल के काउंटर के ठीक ऊपर बने मिट्टी के घर में बैठ गई। “पहली बार इस चिड़िया ने दुकान में घर बनाया है।” दुकानदार बोला। उसने वो ‘किस्मत चमकनेवाली’ लोक कथा नहीं सुनी थी। उसे तो बस लगता था कि अगर किसी ने अपना घर बना लिया है तो उसे परेशान नहीं करना चाहिए। वो रोज़ सुबह आठ बजे दुकान खोलते और रात आठ बजे बन्द करते। पूरे सातों दिन। स्वॉलो को भी इस इन्तज़ाम में कोई दिक्कत नहीं थी।



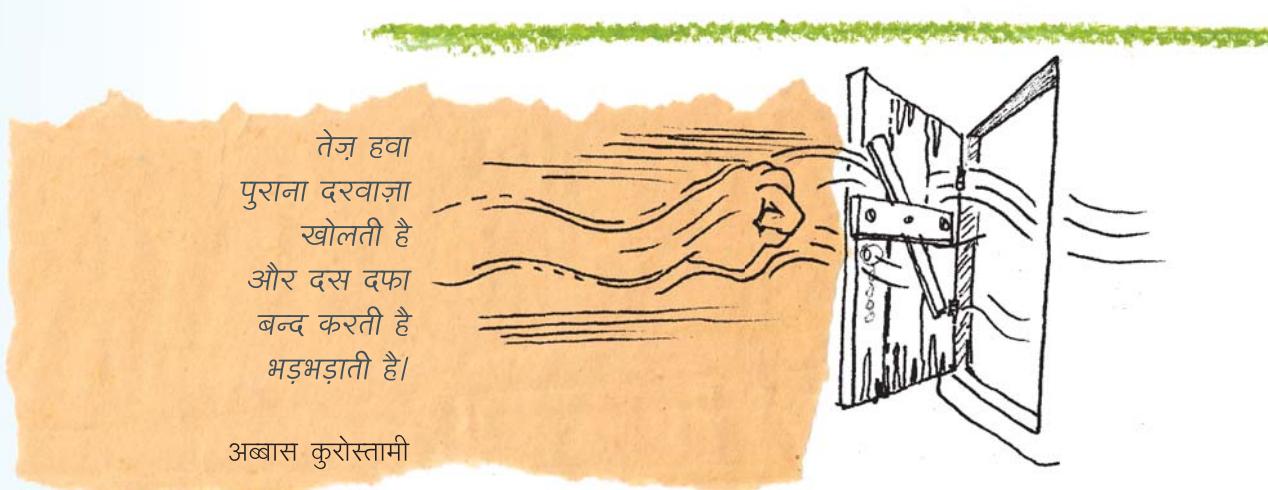
स्वॉलों का घोंसला बहुत अजूबा होता है। स्वॉलों का जोड़ा गीली मिट्टी की गोलियाँ चौंच में भर-भरकर दीवार पर चिपकाता जाता है। आमतौर पर ऐसी जगह जहाँ छत दीवार से मिलती है। कभी-कभी तो बल्ब का होल्डर भी उनके घर के टिकने के लिए काफी होता है। वे थोड़ी गोलाई में इस मिट्टी को चिपकाते जाते हैं। घर धीरे-धीरे बनता जाता है। जैसे ओक बनाकर पानी पिया जाता है ना, उसी आकार का होता है घोंसला। घोंसले के भीतर घास का बिस्तर बिछा होता है।

स्वॉलों के पाँव बहुत छोटे होते हैं। आमतौर पर ये तारों या पतली टहनियों पर बैठती हैं। अब भी इसे अजूबा मानने में तुम्हें कोई कोर-कसर दिखती है तो ये लो एक और खूबी। देखनेवाले कहते हैं कि यह एक घण्टे में 60 कीड़े तक पकड़ लेती है। यानी एक दिन में 800 कीड़े। महीने में 24000...। कीटों पर नियंत्रण का इससे बढ़िया तरीका और क्या होगा!

अगली बार अपने घर, स्कूल, बरामदे, दुकान पर कोई कप-घोंसला देखो तो समझ जाना स्वॉलों तुम पर मेहरबान हुई है। उसके घोंसले को टूटने-फूटने से बचाना। वो थोड़ी-सी मरम्मत करके वही घोंसला साल दर साल इस्तेमाल करती है। तुम दूर से चुपचाप उसे अपना घर ठीक करते, बच्चों का ख्याल करते देखना। धीरे-धीरे उसे तुम्हारी आदत हो जाएगी। तुम उसके शुक्रगुजार होना कि अपना आशियाना बनाने के लिए उसने तुम्हें चुना। दूर से, धीमे से कहना - पथारो म्हारे देस... 



चित्र : अतनु राय



कौन-सा रंग तुम्हें सबसे ज्यादा पसन्द है?

एक चित्र बनाओ। उसमें केवल दो ही रंग हों। एक जो तुम्हें पसन्द हो और दूसरा बिल्कुल नया रंग।

नया रंग? वो कैसे बनेगा?

तुम दो-चार रंग ले आओ और बनाते जाओ -

सफेद + लाल + हरा = नया रंग

लाल + पीला + काला = नया रंग

जामुनी + पीला = नया रंग

यानी कोई भी दो या तीन रंग मिलाकर नया रंग बनाया जा सकता है।

बन गया?

मेरा पसन्दीदा रंग —

मेरा नया रंग —

क्या तुम्हें इस नए रंग का नाम मालूम है?

हम्म! शायद जापान में इस रंग का नाम मिल जाए। लाल, पीला, नीला, काला, सफेद के अलावा जापान में तकरीबन 500 और रंग हैं। यानी 500 रंग हैं और उनके 500 नाम हैं। यह सारे रंग मूल रंगों को मिलाजुला कर बने हैं।

ये सारे जापानी रंग किसी न किसी फूल, पक्षी, पेड़, पौधे, फल, पत्ते, सब्जियों, जानवरों के रंग हैं। जापानियों ने इनके रंगों से मेल खाते रंग बना दिए हैं। चित्रों, कपड़ों, मिठाइयों, चादरों-परदों...हर जगह इन्हें देखा जा सकता है।

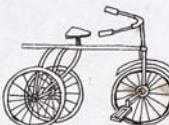
दुनिया की हर संस्कृति के अपने खास रंग होते हैं। वहाँ की संस्कृति इन रंगों को एक अर्थ देती है। वहाँ के रोज़मर्ह के जीवन, प्रकृति, संस्कृति के प्रभाव में ये पारम्परिक हो जाते हैं। इनका वहाँ काफी इस्तेमाल होता है और ये वहाँ की पहचान बन जाते हैं।

रेगिस्तान में हरे पेड़ों को देखना और पहाड़ों में हरे पेड़ों को देखना एकदम अलग एहसास है। रेगिस्तान में रेत के



वृषाली जोशी

सुनहरे पीले रंग के बीच हरे रंग के कुछ पेड़-पौधे ठण्डक महसूस कराते हैं। सजीव लगते हैं। जबकि हरे पेड़ों से ढँके पहाड़ विशालता की अनुभूति देते हैं। रेगिस्तान में रेत का पीला रंग विशालता का अहसास देता है।



बर्फीली जगहों पर हर चीज़ पर जैसे सफेद रंग चढ़ा होता है। जबकि बाकि जगहों पर सफेद रंग अधिकतर फल-फूल-सज्जियों-कपड़ों आदि में ही नज़र आता है। बर्फीली जगहों में सफेद बर्फ बाकी सारे रंगों को ढँक लेती है। सिर्फ वहाँ की सुन्दरता बनी रहती है। जब बर्फ पिघलने लगती है तो उस सफेदी में फिर से रंग दिखने लगते हैं।

प्रकृति के रंगों के इन खेलों से ही उस जगह पर रंगों को देखने का नज़रिया बनता है। हर रंग पहले प्रकृति में दिखता है फिर उसे अपनाकर हम दूसरी चीज़ों में इस्तेमाल करने लगते हैं। ज्यादातर पारम्परिक रंग फूल, पत्तों, पेड़ की छाल और रंगीन पत्थरों से बनाए जाते हैं। इनका इस्तेमाल कई देशों में होता है।

जापान में पारम्परिक चित्रों में ज्यादातर रंगीन पत्थरों से बने रंगों का इस्तेमाल होता है। रंगों को अलग-अलग चीज़ों के नाम दिए जाते हैं। जिस चीज़ का नाम होता है वही उस रंग का स्रोत भी होता है।

सोरा इरो
आकाश रंग

मोमो इरो
आडू रंग

साकूरा (चेरी का फूल) इरो
साकूरा रंग

साकूरा - निजूमी इरो
साकूरा - साकूरा ग्रे रंग (चूहे जैसा)

निजूमी यानी चूहा, निजूमी हर उस रंग में इस्तेमाल होता है जहाँ ग्रे रंग का शेड हो।

जैसे
फूजी नेजूमी इरो - हलका जामुनी ग्रे रंग

चाय निजूमी इरो - हलका ब्राउन रंग

है सकूरा इरो
गहरा सकूरा रंग

नोनोहाना इरो
सारसों के फूल का रंग

सरसों के तेल का रंग
फूजी इरो
फूजी रंग

मोमीजो इरो
मोमीजी रंग

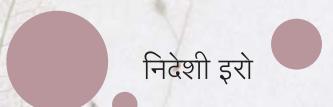
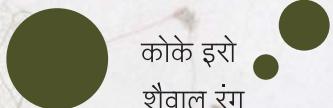
ओइताके इरो
परिपक्व बाँस का रंग

ओताके इरो
युवा बाँस का रंग

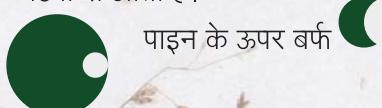
वाताके इरो
छोटे बाँस का रंग

नासूकोन इरो
बैंगन का रंग





रंगों के अलावा कुछ रंग संगतियाँ भी हैं जो प्राकृतिक घटना से आती हैं।



गुलदावदी के फूल और पत्ते

पारम्परिक जापानी रंगों की किताब का एक पन्ना



जापानी चित्र



सभी रंग अपने-अपने मूल रंगों की छटाओं से जाने जाते हैं।

लाल रंग की छटाएँ ●

भूरे रंग की छटाएँ ●

पीले रंग की छटाएँ ●

जामुनी रंग की छटाएँ ●

नीले रंग की छटाएँ ●

हरे रंग की छटाएँ ●

सुनहरे और चाँदी के रंग की छटाएँ ● ● ●

ग्रे, काले और सफेद रंग की छटाएँ ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ●

हर मौसम में खिलनेवाले फूल, पत्तों, आसमान... के रंग से बनता है उस मौसम का रंग।

बसन्त में जापान में सकूरा, फूजी जैसे फूल खिलते हैं। तो उसका बासन्ती रंग है...



ठण्ड में रंग थोड़े ग्रे हो जाते हैं

गर्मियों में रंग आते हैं फूजी से

और पतझड़ में पत्तों के रंग लाल, पीले, नारंगी हो जाते हैं।



पर्द, किमोनो, मिठाई सब उस मौसम के रंग में रंग जाते हैं। हाइकू भी इन रंगों के जादू से अछूते नहीं रहते।

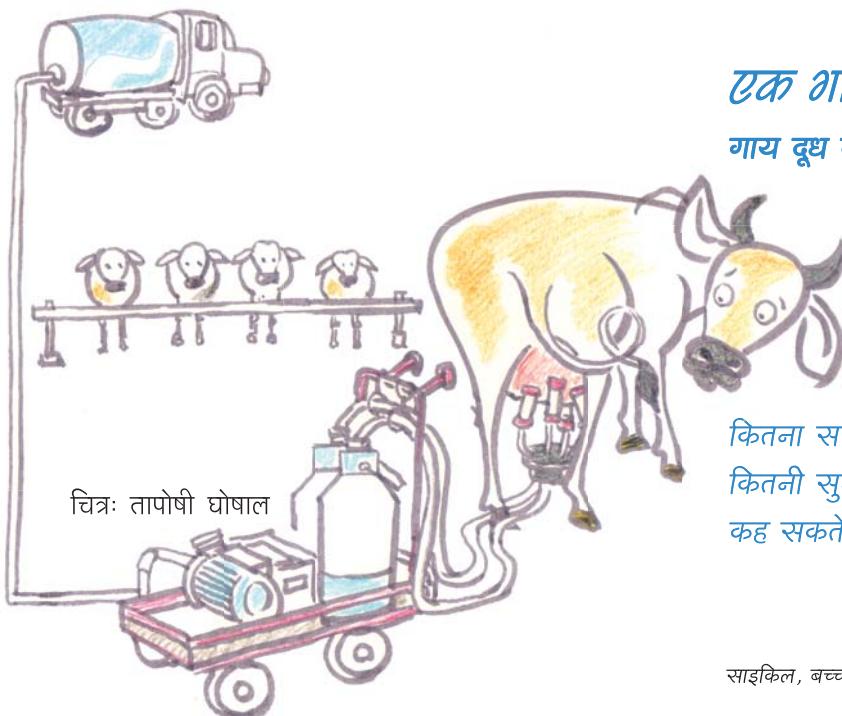
पाँचवीं सदी तक जापान में हरे रंग का कोई नाम नहीं था। जब जापान में बाहरी लोग आए तब हरा रंग 'मिदोरी' नाम से जाना जाने लगा। इससे पहले तो हरे को किसी प्राकृतिक चीज़ से ही जोड़ा जाता था या उसे भी नीला कह देते थे। आज भी जापान में हरा सिग्नल नहीं होता। नीला सिग्नल होता है। हरे को पेड़ से जोड़कर देखा जाता है। इसे 'कि-मिदोरी-इरो' कहते हैं यानी पेड़ का हरा रंग।

तो क्या तुम्हारा बनाया नया रंग
तुमको जापानी रंगों में दिखा?

अगर हूबहू मैंच नहीं कर रहा हो तो
उसके आसपास का तो होगा ही। इस नए रंग का नाम
अपने चित्र के साथ लिखना।



यह भी बताना कि तुम्हें यही रंग क्यों पसन्द है। और प्रकृति में यह कहाँ पाया जाता है।



एक गाय की धारणी

गाय दूध देती है - यह कितना झूठा वाक्य है।
किसी गाय ने आज तक दूध नहीं दिया। गाय से दूध ले लिया जाता है। गाय के बच्चे के अलावा कोई भी यह कहे तो गलत है। गाय दूध देती है कितना सरल वाक्य है। इसने छीना-झपटी को कितनी सुन्दरता से छिपा लिया है। हाँ, यह कह सकते हैं - गाय गोबर देती है।



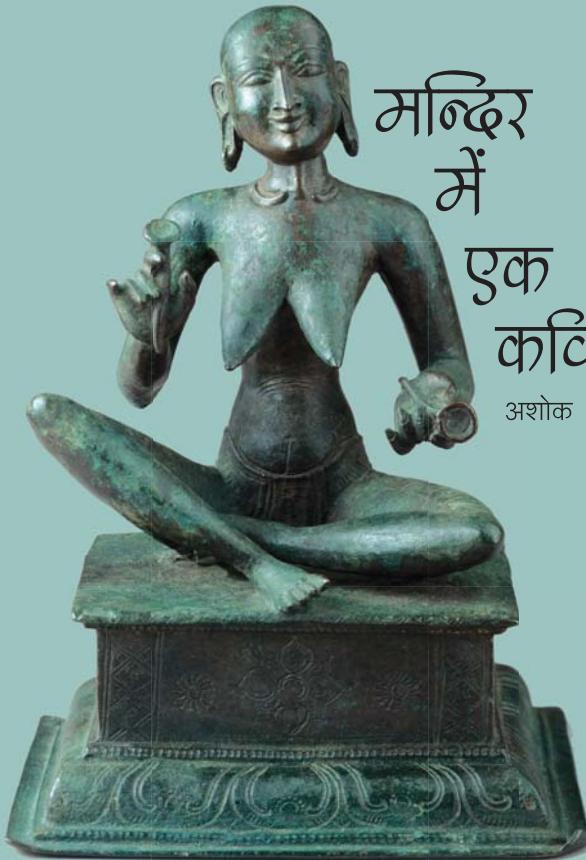
धर्म और साहित्य का रिश्ता बहुत पुराना है। साहित्य का एक बड़ा हिस्सा धार्मिक कथाओं और देवी-देवताओं की स्तुतियों से भरा पड़ा है। साहित्य में राजा-राजियों के किस्सों ने उन्हें ईश्वर की ही तरह पूजनीय भी बनाया है।

साहित्य की ऐसी भूमिका के बावजूद आमतौर पर मन्दिरों में किसी कवि की मूर्ति हमें नहीं मिलती है। तमिलनाडु के तिरुवल्लुर ज़िले के पोन्नेरी गाँव में एक कैलाशनाथ स्वामी का मन्दिर है। इस मन्दिर में एक नटराज की मूर्ति है। इसी नटराज की मूर्ति के निचले हिस्से में एक दुबली-पतली महिला की मूर्ति है।

आमतौर पर मन्दिरों में देवदासियों, नर्तकियों, नायिकाओं, अप्सराओं की सुन्दर मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। यहाँ हड्डियों के ढाँचे में तब्दील हो चुकी एक औरत की मूर्ति देखने की उम्मीद नहीं रहती है। दरअसल यह छठी शताब्दी के तमिलनाडु की भक्तिकालीन शैव कवि अम्मियार की मूर्ति है। उस समय के भारतीय समाज में किसी आम महिला को उसके लेखन जैसे गुणों के लिए इस तरह सम्मान मिलना चाँकाता है। लेकिन तमिलनाडु के मन्दिरों में नटराज शिव की मूर्तियों के साथ अम्मियार की मूर्तियाँ मिलती हैं।

मन्दिर में एक कवि

अशोक भौमिक



दक्षिण भारत लम्बे समय (300 ईसा पूर्व से 1279 ईस्वी) तक चोलों के अधीन था। इस दौरान दक्षिण भारत में कई महत्वपूर्ण मन्दिर बने। इतिहासकारों का मानना है कि भक्तिकालीन शैव कवि कराइक्कल अम्मियार का जन्म छठी सदी के आसपास हुआ था। कहते हैं कि अम्मियार अत्यन्त सुन्दर महिला थीं। उन्होंने शिव से प्रार्थना की कि वे उन्हें सांसारिक मोहमाया से तथा शारीरिक सौन्दर्य से मुक्त कर दें। शिव ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। और उन्हें एक अत्यन्त वृद्ध महिला में बदल दिया। अम्मियार ने अपना जीवन मन्दिरों में शिव की नटराज मूर्तियों की साधना में बिताया। यह कथा सदियों दक्षिण भारत में प्रचलित रही।

दसवीं सदी में चोल राजमाता शेष्मियन महादेवी हुईं। उन्हें इतिहास में कला और स्थापत्य के संरक्षक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने कई मन्दिरों की मरम्मत की और नए मन्दिर भी बनवाए। उन्होंने तमिलनाडु के अनेक शिव मन्दिरों में अम्मियार की मूर्तियों की स्थापना की।





अम्मियार की इन मूर्तियों की कल्पना लोककथाओं के आधार पर चार सौ साल बाद की गई। अम्मियार के इस रूप में सौन्दर्य की प्रचलित मान्यता से अलग सृजन का साहस दिखाई देता है। जनता ने अम्मियार को उनके अपने रूप में स्वीकार किया। सम्मान दिया। इसी कारण से भी मूर्तिकार अम्मियार के इस रूप की कल्पना कर उसे रचने का साहस कर सके। अम्मियार की मूर्तियाँ वास्तव में एक उन्नत कलाचेतना सम्पन्न समाज की कृतियाँ हैं। जहाँ कलाकार और कला रसिक समाज के दो अलग हिस्से नहीं लगते हैं।

●

अम्मियार की ज्यादातर मूर्तियाँ दीवारों पर उभार कर बनाई हुई (रिलीफ) मूर्तियाँ हैं। उनकी धातुओं की बनी मूर्तियाँ भी हमें मिलती हैं। अमरीका के मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम में तेरहवीं सदी की बनी एक मूर्ति सहेजी हुई है। इसमें अम्मियार का सर मुँडा हुआ है। उनके हाथों में करताल यानी झाँझ है।

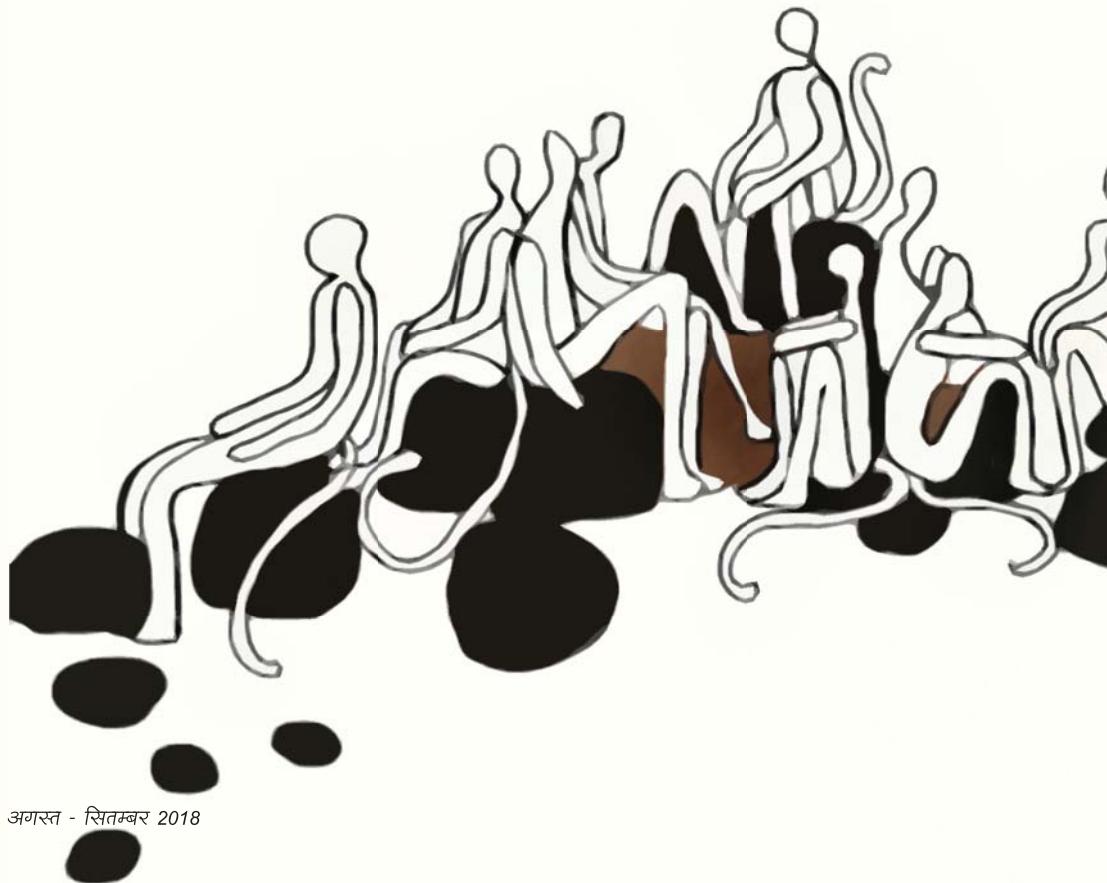




जो पुल बनाएँगे

अङ्गेय

जो पुल बनाएँगे
वे अनिवार्यतः
पीछे रह जाएँगे।
सेनाएँ हो जाएँगी पार
मारे जाएँगे रावण
जयी होंगे राम,
जो निर्माता रहे
इतिहास में
बन्दर कहलाएँगे।



यह कविता सिर्फ पुल बनानेवालों के बारे में नहीं है। यह कविता दरअसल उन सभी कारीगरों, किसानों और मजदूरों के बारे में है जो कड़ी मेहनत से, जिन चीज़ों को बनाते हैं या खेतों में पैदा करते हैं उन पर कुछ ताकतवर लोग कब्ज़ा कर लेते हैं। और उन्हें बनानेवाले अपनी ही बनाई चीज़ों के लिए तरसते रह जाते हैं।

यह बात कहने के लिए कवि ने राम और रावण की कथा का सहारा लिया है। पुल के बिना राम की सेना का समुद्र पार करके लंका तक पहुँचना असम्भव था। और बन्दरों के बिना राम रावण से जीत नहीं सकते थे।

ये पुल नल और नील नामक बन्दरों की देखरेख में बन्दरों ने ही बनाया था। राम ने लंका जीत ली और वे अयोध्या के राजा हो गए।
लेकिन बन्दर? वे तो बन्दर के

बन्दर ही रह गए। युद्ध की पृष्ठभूमि में इसे देखें।

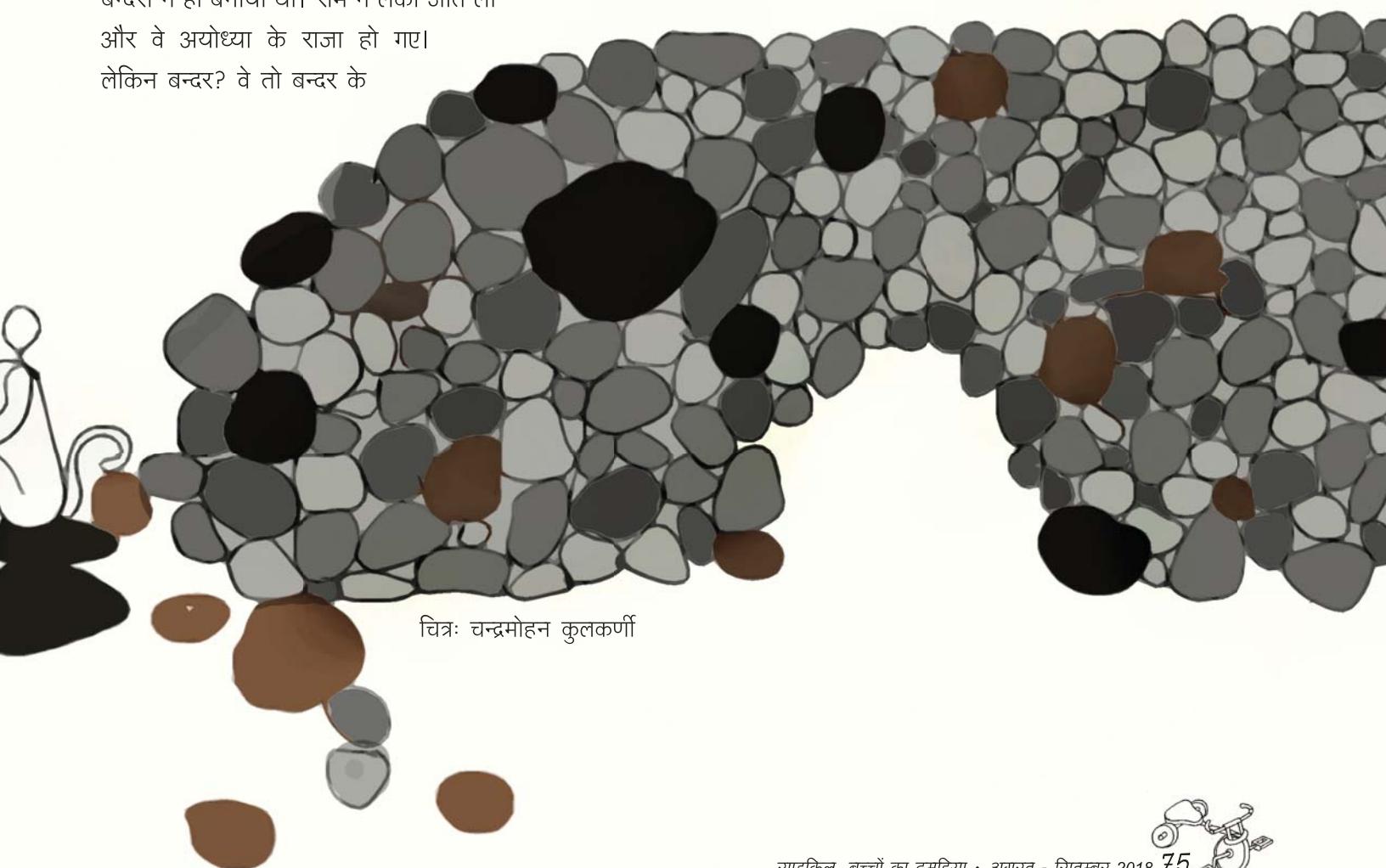
आज भी जब सेनाएँ आगे बढ़ती हैं तो खाइयों और नदियों पर पुल बनानेवालों की टोली आगे चलती है। यदि शत्रु सेना का आक्रमण होता है तो सबसे पहले उन्हीं पर होता है।

और जब सेनाएँ पराजित होकर या किसी कारण पीछे भागती हैं तो पुल पार करते ही वे उन्हें उड़ा देती हैं जिससे दुश्मन सेना पीछा नहीं कर सके।

यानी पुल उड़ानेवाली टोली सबसे पीछे होती है। यानी दुश्मन का हमला सबसे पहले उन्हीं पर होता है जो पुल बनाना और तोड़ना जानते हैं।



नरेश सक्सेना



चित्र: चन्द्रमोहन कुलकर्णी



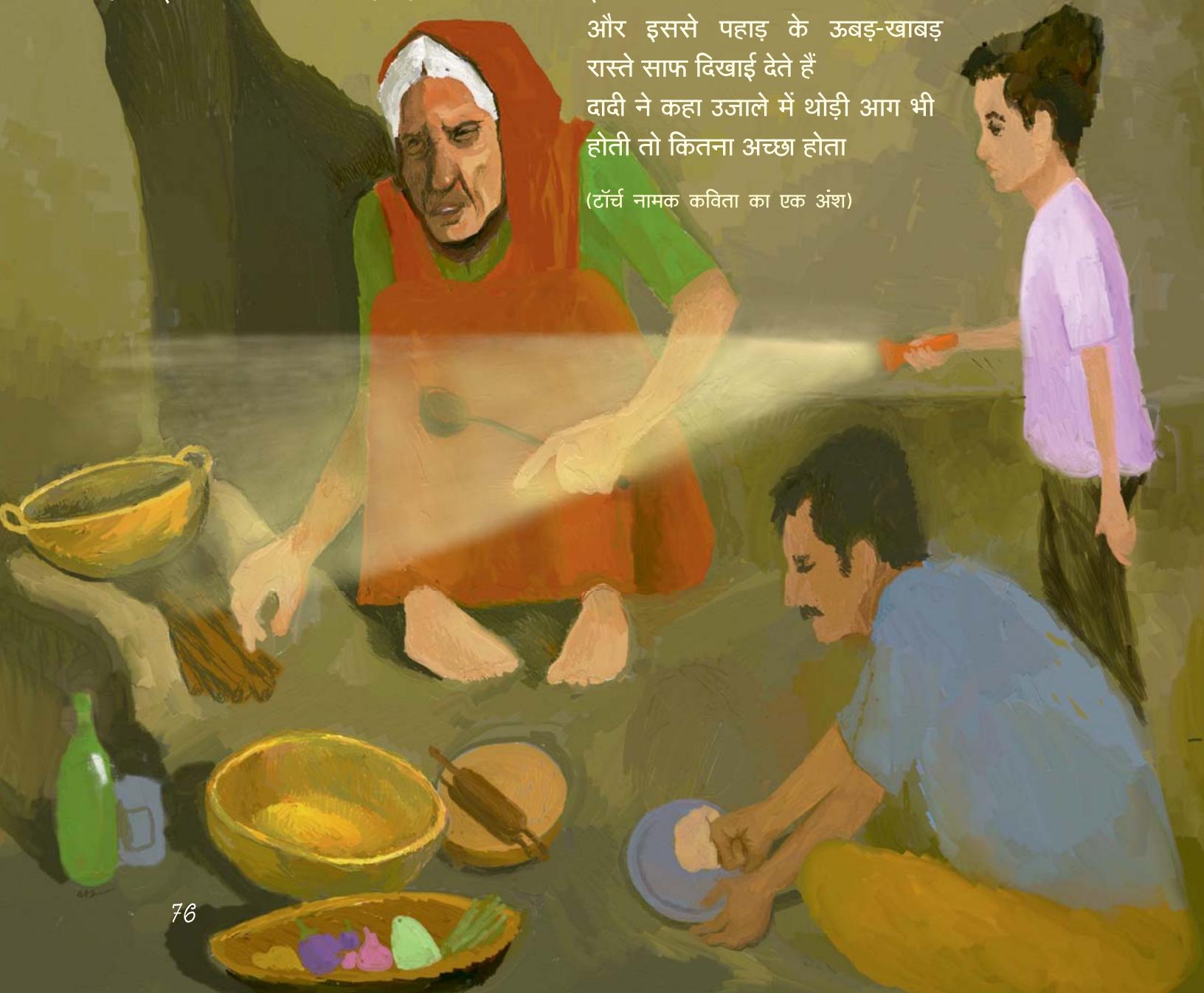
टॉर्च

मंगलेश डबराल
चित्र : अतनु राय

मेरे बचपन के दिनों में
एक बार मेरे पिता एक सुन्दर-सी टॉर्च लाए
जिसके शीशे में खाँचे बने हुए थे
जैसे आजकल कारों की हेडलाइट में होते हैं
हमारे इलाके में रोशनी की वह पहली मशीन थी

जिसकी शहतीर एक चमत्कार की तरह
रात को दो हिस्सों में बाँट देती थी
एक सुबह मेरी पड़ोस की एक दादी ने पिता से कहा
बेटा इस मशीन से चूल्हा जलाने के लिए थोड़ी-सी आग दे दो
पिता ने हँस कर कहा चाची इसमें आग नहीं होती सिर्फ
उजाला होता है
इसे रात होने पर जलाते हैं
और इससे पहाड़ के ऊबड़-खाबड़
रास्ते साफ दिखाई देते हैं
दादी ने कहा उजाले में थोड़ी आग भी
होती तो कितना अच्छा होता

(टॉर्च नामक कविता का एक अंश)





अमिताश ओझा

माता-पिता और कानून बनानेवालों ने सही-गलत का निर्णय कैसे लिया? और क्या कोई काम किसी परिस्थिति में सही और किसी दूसरी परिस्थिति में गलत हो सकता है?

नैतिक दर्शनशास्त्र (मॉरल फिलोसोफी) ऐसे ही विषयों पर विचार करता है। जैसे, यही कि सही क्या है और गलत क्या है? इस पर दर्शनशास्त्रियों की राय अलग-अलग है। कुछ इसे अटल मानते हैं जैसे आकाश में तारों का स्थान है। यानी सच बोलना सही है तो चाहे कुछ हो जाए सच बोलना ही सही होगा। किसी को ठेस ना पहुँचाने के डर से बोला गया झूठ कभी सही नहीं हो सकता। जबकि कुछ दर्शनशास्त्री मानते हैं कि सही और गलत की परिभाषा स्थान, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। यानी किसी को ठेस ना पहुँचे इसलिए बोला गया झूठ सही भी हो सकता है।

कुछ दर्शनशास्त्री ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि सही-गलत की परिभाषा तो कभी नहीं बदलती पर ऐसे में किए गए कार्य का उद्देश्य महत्वपूर्ण होता है। जैसे, हमेशा सच बोलना ही सही है पर यदि किसी को ठेस पहुँचाने के लिए सच बोला जाए तो ये उद्देश्य गलत है, सत्य बोलना नहीं।

धर्मसंकट की इस सीरीज में सही-गलत पर चर्चा होगी। हर अंक में हम एक कहानी पढ़ेंगे। और एक सवाल से जूँझेंगे। अगले अंक में तुम्हारे जवाबों पर चर्चा होगी। मैं अपना जवाब भी सुनाऊँगा।

राहुल और रमन

राहुल और रमन पक्के दोस्त थे। स्कूल में सब उनकी दोस्ती की मिसाल देते थे। राहुल गरीब था जबकि रमन बड़े घर का लड़का था। राहुल पढ़ने में बहुत अच्छा था। जबकि रमन का मन पढ़ाई से ज्यादा शरारतों में लगता था। पर दोनों की दोस्ती इतनी गहरी थी कि समय पड़ने पर रमन हमेशा राहुल की मदद को तैयार रहता था। पिछले साल जब सारा स्कूल पिकनिक पर जा रहा था और राहुल के पास पैसे नहीं थे तब रमन ने उसकी मदद की थी।

एक बार दिवाली से पहले प्रिंसिपल ने सब को कहा कि कोई भी स्कूल में पटाखे नहीं चलाएगा। यदि किसी ने ऐसी शरारत की तो उसे कड़ी सज़ा मिलेगा।

पर रमन तो शरारती था। दिवाली के एक दिन पहले वह खूब सारे बम-पटाखे अपने बस्ते में छुपाकर स्कूल ले आया। उसने राहुल से कहा कि अगर दोनों मिलकर पटाखे चलाएँगे तो बड़ा मज़ा आएगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा। पर राहुल को यह बात ठीक नहीं लगी। पकड़े जाने पर उसे स्कूल से निकाले जाने का भी डर था। उसकी शरारत से घरवालों को दुख भी होता। उसने रमन को ये शरारत न करने की सलाह दी।

चित्र: प्रोइती रॉय



उस दिन लंच के समय स्कूल में चार बड़े धमाके हुए। कई खिड़कियों के काँच भी टूट गए। राहुल दौड़ा-दौड़ा रमन के पास गया और उससे पूछा कि क्या पटाखे उसने चलाए हैं? रमन ने मुस्कराते हुए कहा, हाँ, पर इस बात का किसी को भी पता नहीं। तू भी अपना मुँह मत खोलना।

लंच के बाद प्रिंसिपल उनकी क्लास में आए और गुस्से में बोले, “मेरे मना करने के बाद भी यह शरारत किसने की है?” पूरी कक्षा शान्त थी। सब एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। किसी को भी पता नहीं था। पर राहुल को तो पता था। पर वह यह बात कैसे बता सकता था। रमन उसका सबसे अच्छा दोस्त था। उसने कई बार राहुल की मदद भी की थी।

किसी के कुछ न कहने पर प्रिंसिपल ने कहा, “अगर किसी ने सच नहीं बताया तो पूरी क्लास को सज्जा मिलेगी।” फिर उन्होंने राहुल से पूछा, “राहुल, क्या तुम्हें पता है कि पटाखे किसने चलाए हैं?”

राहुल को समझ नहीं आ रहा कि वह क्या करे। यदि वह झूठ बोले तो अकारण सारी क्लास सज्जा भोगेगी। और अगर उसने सच बताया तो उसके सबसे अच्छे दोस्त को सज्जा मिलेगी।

राहुल एक धर्मसंकट में फँसा है। उसे क्या करना चाहिए? सच बोले या झूठ? 

कराची

का चौसा



एक दिन मैं फल की दूकान पर पहुँचा। सितम्बर का महीना था। बक्सा भर चौसा आम रखे थे। मुझे ताज्जुब हुआ। मैंने फल वाले से पूछा, “भाई ये चौसे का सीज़न तो खत्म हो गया。” वह बोला, “ये कराची का चौसा है। देर से आता है। कल ही आया है। दो-चार दिन का ही है।”

मैंने एक आम उठाकर देखा। आम एकदम यहाँ के चौसे जैसा था। वही खुशबू पाकिस्तान से गोला-बारूद आने की खबरें आती रहती हैं। कितने कम लोगों को पता होगा कि वहाँ से चौसा भी आता है। बारूद-गोले आते हैं, आतंकवाद की नर्सरी है - आदि खबरों के बीच यह एक मीठी बात गुम हुई रहती है। मैंने कभी पाकिस्तान से आया गोला-बारूद नहीं देखा। न ही मैं देखकर बता सकता हूँ कि यह गोला-बारूद पाकिस्तान से आया है। (बल्कि मुझमें किसी भी

गोला-बारूद को अलग-अलग करके देख पाने का हुनर न ही आए...)

मैं यह आम छूना चाहता हूँ। इसकी खुशबू महसूस करना चाहता हूँ। यह आम है तो कोई पेड़ होगा। जो पाकिस्तान में होगा। एक बाग होगा। किसी ने आम सहेजे होंगे। पाकिस्तान के पानी को भी वहाँ के मौसम इतने मीठे आम में तब्दील करते हैं। सूरज, हवा, मिट्टी वहाँ वैसा ही असर करते हैं जैसे कि हमारे यहाँ।

...पैसे नहीं होते थे तो किसी दोस्त को बिना टिकिट लगी चिट्ठी भेज देते थे। वह बैरंग चिट्ठी टिकिट के पैसे चुकाकर छुड़ा लेता था। मेरे लिए ये आम एक बैरंग चिट्ठी ही है। जिसे मैंने टिकिट की कीमत चुकाकर ले लिया। और देर तक आम को हाथ में लिए पढ़ता रहा। 



झटपट

वीरेन्द्र दुबे
चित्रः नवरीना सिंह

चार चटोरे
हट्टे कट्टे
चटकर डाले
दही बड़े।
बीस बैठकर
खाए गप गप
तीस खा गए
खड़े-खड़े
उतने ही ले
आओ झटपट
खा लेंगे तब
पड़े पड़े।

क्या तुम 30 सेंटीमीटर लम्बी कागज की एक पट्टी को एक ही बार काटकर तीन टुकड़ों में बाँट सकते हो?

अकाहू और उत्तरवेवाद

कई दिनोंतक चुल्हा रोग, गँड़ी रही उदास
 कई दिनोंतक बारी छुतिया से ईउनके पास
 कई दिनोंतक भीरपट छिपकलियोंकी ग़ज
 कई दिनोंतक तूहांकी भी हुल्हत रही शिकस्त

धूमे अर धरके अलट कई दिनोंके बाद
 धुआं उठा आंगनके ऊपट कई दिनोंके बाद
 ज्यक उठी घासभरी अरवें ईरियोंके बाद
 खौफने सुनहराई फ़रें कई दिनोंके बाद

नागर्जुन
८५३

बाबा नागार्जुन के हाथों लिखी कविता।
 ये रेखांकन चित्रकार हरचन्दन भट्टी के हैं।

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा तक्षशिला पल्लिकेशन - तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी की इकाई के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़, शेड नं. 92 डी.एस.आई.डी.सी. ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेझ 1, नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं
 सी-404, बेसमेंट, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित

सम्पादक: सुशील शुक्ल